१२५

श्री महेन्द्र पुस्तकमाला — पुष्प ५

मानस-प्रसङ्ग

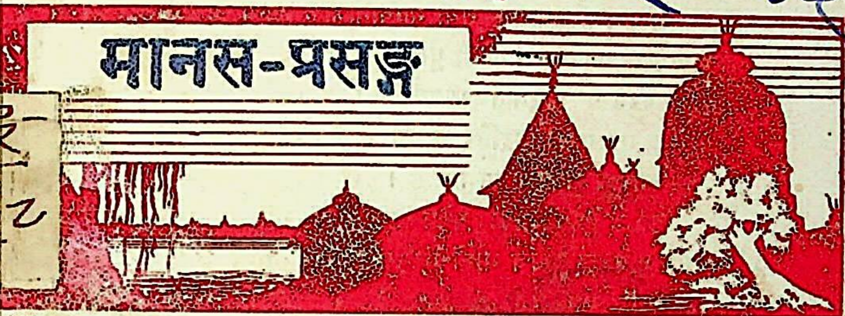

[द्वितीय भाग]

श्री १०८ ... पुस्तकालय ... काशी

लेखक

“मानस-राजहंस” पंडित विजयानन्द त्रिपाठी

ीमान् नरेन्द्र महाराज महेन्द्रसिंह जू देव, नागौद नरेश के शुभदान से प्रकाशित

प्रकाशक

मंत्री—मानससंघ

पो० रामवन, वाया सतना

संस्करण] [मूल्य ॥-)

श्री महेन्द्र पुस्तकमाला

श्रीरामचरितमानस तथा गोस्वामीजीके अन्य ग्रंथोंके आधार पर विविध विषयोंकी उपयोगी पुस्तकोंका प्रकाशन 'श्रीमहेन्द्र पुस्तकमाला' द्वारा करनेकी अनुमति मानससंघको प्रदान करनेकी कृपा श्रीमान् नरमेन्द्र महाराज महेन्द्रसिंह जू देव नागौद नरेशने की है। संघ इसके लिये आपका विशेष आभारी है।

हर्ष है कि मालाकी यथेष्ट उन्नति हो रही है। यह पाचवाँ पुष्प "मानस-प्रसङ्ग" पांच भागों में पूर्ण होगा। अन्य पुस्तकें भी तैयार हो रही हैं।

शारदा प्रसाद
मन्त्री—मानससङ्घ
पो० रामवन, वाया सतना।

मानस-सङ्घ

श्रीरामचरितमानस के प्रचार द्वारा जगतका परम कल्याण हमारा उद्देश है।

केवल एक बार ॥) शुल्क देकर जीवन भरके लिये आप सङ्घ के सदस्य बन सकते हैं।

प्रत्येक सदस्यको वर्ष में श्रीरामचारितमानसके दो पारायण करने की प्रतिज्ञा करनी पड़ती है। दो नये सदस्य बनाने चाहिये।

देश में मानस सङ्घ के सहस्त्रों सदस्य हैं और सैकड़ों शाखायें हैं। एक स्थान पर ६ सदस्य होने पर शाखा हो जाती है।

सङ्घ मानस पारायणका प्रचार करता है। इस कार्य के लिये 'मानसमणि' मासिक पत्र निकालता है और पुस्तकें प्रकाशित करता है।

सङ्घ के इस समय चार ग्रन्थ माला निकल रही हैं। १—श्री मानस रत्नावली ग्रन्थ माला २—श्री महेन्द्र पुस्तकमाला ३—श्री कौशलेन्द कथा माला ४—श्री रामदास भक्तमाला।

आप सदस्य बनें, दूसरों को बनावें, पत्र मंगावें और पुस्तकोंका अध्ययन करें। सदस्य फार्म यहाँ लिखने से भेज दिये जावेंगे।

निवेदक—मन्त्री, मानस संघ।

मानस-प्रसङ्ग

[द्वितीय भाग]

श्री १०८
पुस्तकालय,
काशी।

लेखक

'मानस-राजहंस' पंडित विजयानंदजी त्रिपाठी

प्रकाशक
मन्त्री—मानससंघ
पो० रामवन,
वाया सतना ।

मुद्रक
माघो प्रिंटिंग वर्क्स,
इलाहाबाद ।

मानस प्रसङ्ग

[द्वितीय भाग]

रघुपति महिमा अगुन अबाधा।
बरनब सोइ बरवारि अगाधा ॥ १ ॥

अर्थ—सातो प्रबन्ध सुन्दर सीढ़ियाँ हैं, जिन्हें ज्ञानरूपी नेत्रद्वारा देखने से, मन प्रसन्न हो जाता है—श्री रघुनाथ जी की निर्गुण और बाध रहित महिमा का जो वर्णन करूँगा, वही श्रेष्ठ अथाह जल है।

सप्त प्रबन्ध---जिन्हें बाल, अयोध्या, आरण्य, किष्किन्धा, सुन्दर, लङ्का और उत्तर काण्डों के नाम से अभिहित किया जाता है वे ही सात प्रबन्ध हैं। यह शङ्का भी न करनी चाहिये कि लोगों ने पीछे से, वाल्मीकीय तथा अध्यात्म के आधार पर, सातों प्रबन्धों के बाल अयो-ध्यादि नाम रख दिये, क्योंकि बिना इनके माने काम नहीं चलता।

ग्रन्थभर में कहीं किष्किन्धा का नाम नहीं आया है। अब यदि चौथे प्रबन्ध का नाम किष्किन्धा न मानिये, 'मंत्रिन्ह पुर देखा बिनु साईं', अथवा 'अर्धरात्रि पुरद्वार पुकारा' इन अर्धालियों के 'पुर' का पता ही न चलेगा, कि वह कौनसा पुर था, जिसका हाल कह रहे हैं। अतः प्रबन्धों का किष्किन्धादि नाम मानना ही पड़ेगा।

पहिले ही कह चुका हूँ कि श्रीरामचरित के साथ साथ प्रत्येक काण्ड में, दो दो प्रकार के भक्तों की कथाएँ हैं; इस भाँति १४ प्रकार की भक्तियों का निरूपण है। इनमें से किसी प्रकार का आश्रयण करने से परम कल्याण है, फिर भी ये परस्पर असम्बद्ध नहीं हैं, किसी एक का आश्रयण करने से, अन्य में विचरण की शक्ति आप से आप हो जाती है।

अतः ये प्रबंध पृथक् पृथक् होते हुए भी, परस्पर सम्बद्ध हैं, क्योंकि सभी भक्ति के प्रतिपादक हैं, यथा—

येहि महँ रुचिर सप्त सोपाना।
रघुपति भगति केर पन्थाना॥

और मुक्ति भक्ति को छोड़कर कहीं रह नहीं सकती, यथा —

राम भजत सोइ मुकुति गोसाईं।
अनइच्छित आवै बरिआईं॥

सो ये सातों प्रबंध, सातों पुरियों की भाँति मुक्ति के प्रापक हैं, यही बात निम्नलिखित छप्पय में दिखलाई गई है—

छप्पय—

बालकांड है अवध, अवध मथुरा मन भावन।
हरद्वार आरण्य, काशिका किष्किन्धा भन॥
काञ्ची सुंदर लसत, लंक उज्जैन सुहावन।
उत्तर द्वारावती, पुरी सातो मनभावन॥
लसत जहाँ सोपान प्रति, ऐसो रामचरित्रसर।
विजयानद सेवतसुलभ, सबसुखकर कलिकलुषहर॥
अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची अवन्तिका।
पुरी द्वारावती ज्ञेया सप्तैता मोक्षदायिकाः॥

ये ही सात पुरियाँ हैं—

१—अयोध्या—यहाँ का महा माहात्म्य श्री रामजन्म भूमि होने से है। सो बालकाण्ड को अयोध्या कहा गया है। श्री रामजी की जन्म कथा, तथा संस्कारों का बालकांड में ही वर्णन है। अयोध्यापुरी का माहात्म्य, श्री राम नवमी का वर्णन इसीमें किया गया है, अतः इसे अयोध्या कहा।

२—मथुरा—जिस भाँति श्री कृष्ण भगवान् के मथुरा गमन से, गोपगोपिकाओं को तीव्रातितीव्र विरह वेदना हुई, और भक्ति का समुद्र उमड़ पड़ा, उसी भाँति श्रीरामजी के बनवास से, अवध वासियों की भी वही गति हुई। इस प्रेमोत्कर्ष की कथा अयोध्याकाण्ड में ही है।

दूसरी बात यह है कि मथुराजी में भगवान का जन्म है, और इस काण्ड में उनके अवतार का बीज है। वन जाने पर श्री रामचंद्र आनन्द कन्द का अलौकिक सौंदर्य देख कर मुनियों ने आलिङ्गन करना चाहा। सरकार ने कहा कि मेरा कृष्णावतार होगा, तब तुम लोग गोप गोपी होकर आलिङ्गन करना, यथा—

श्री महाविष्णुं सच्चिदानंदलक्षणं रामचंद्रं दृष्ट्वा सर्वाङ्गसुन्दरम्। मुनयो वनवासिनो विस्मिता बभूवुः। ते होचुर्नोवद्यमवतारान् वैगण्यंते आलिङ्गामो भवंतमिति। भवांतरे कृष्णावतारेयूयं गोपिका भूत्वा मामभिलिङ्गथ। श्री कृष्णोपनिषदि। अतः अयोध्या काण्ड को मथुरा माना।

३—माया— आरण्य कांड में माया ही माया भरी है। यहाँ माया का काम, राक्षसों की विकट माया, माया से उनका वध, माया की सीता, माया का मृगमाया के सन्यासी, सब माया ही माया है, और महामाया सती को इसी कांड की कथा में मोह हुआ, जिसका पर्य्यवसान दक्ष यज्ञ में उनके शरीर त्याग से हुआ। वह स्थान भी मायापुरी (कनखल) में है। अतः इस कांड को मायापुरी माना।

४—काशी—किष्किन्धा कांड को काशी मानने के लिये स्वयम् ग्रन्थकार ने बहुत कुछ कहा है। काशीमें ही श्रीराममंत्र के अनुष्ठान से, भगवान् शङ्कर को रामजी मिले, और उन्हीं से वर पाकर, श्रीराम तारक का उपदेश मरण समय में देकर, जीवोंका उद्धार शिवजी करते हैं, यथा—

ततः प्रसन्नो भगवान् श्रीरामः प्राह शङ्करम्।
मुमूर्षोर्दक्षिणे कर्णे यस्य कस्यापि वास्वयम्॥
उपदेक्ष्यसि मन्मन्त्रं समुक्तो भविता शिव।
श्री रामतापनीये।

इसी भांति इस कांड में रुद्रावतार हनुमानजी से रामजी की भेंट हुई। हनुमानजी की कृपा से सब वानर भालुओं को रामजी की प्राप्ति

हुई। अतः इस कांड को काशी माना। स्वयम् गोसाईंजी ने पहिले ही सो० 'मुक्ति जन्म महि'''सो कासी'''' से नामकरण कर दिया है।

५—काञ्ची—यह साझे की पुरी है। सात पुरियों में से तीन (अयोध्या, मथुरा, द्वारावती) विष्णु की पुरियां हैं, और तीन (माया, काशी, अवन्तिका) शिवजी की पुरियां हैं। शेष काञ्ची में दोनों देवताओं का साझा है। आधी विष्णु काञ्ची, और आधी शिव काञ्ची। इसी भांति सुंदर कांड पूर्वार्ध रुद्रावतार हनुमच्चरित है, और उत्तरार्ध में रामचरित है, यथा—

पवन तनय के चरित सोहाए।
जामवंत रघुपतिहि सुनाए॥

६—अवन्तिका—इस पुरी में महाकाल का लिङ्ग है, और लङ्काकांड में ही राक्षसों के विजय के लिये श्रीरामजी ने शिवलिङ्ग स्थापन किया। दूसरी बात यह भी है, कि ज्योतिष शास्त्रानुसार उज्जैन निरंश देश है, इसी भांति लङ्का भी भूमध्य रेखा पर होने से निरंश देश है, अतः लङ्काकांड को उज्जैनी कहा।

७—द्वारावती—द्वारावती में श्रीकृष्ण भगवान् ने राज्य भोग किया है, इसी भांति उत्तर कांड में सरकार ने 'गुनातीत अरु भोग पुरंदर' होकर राज्य भोग किया है। द्वारका सोने की थी, और यहाँ उत्तर कांड में भी 'मनिदीप राजहि भवन भ्राजहि देहरी विद्रुम रची। मनि खंभ भीति विरंचि विरची कनक मनि मरकत खची' इत्यादि वर्णन है। द्वारका श्रीकृष्ण भगवान् के साथ गई, यहाँ भी 'प्रजा सहित रघुवंस मनि किमि गवने निज धाम' का उत्तर देते हुए कहते हैं 'प्रेम सहित मुनि नारद वरनि राम गुन ग्राम। सोभा सिंधु हृदय धरि गए जहाँ विधि धाम'॥ अतः उत्तर कांड को द्वारावती माना।

ये सातो सीढ़ियाँ घाट में ही हैं, और घाट के लिये ग्रन्थकार की प्रतिज्ञा है, कि मैंने अपनी बुद्धि से विचार कर बनाया है, परम्परा का अनुसरण नहीं किया। इसी भांति ये सीढ़ियाँ भी अपनी बुद्धि के अनु-

सार बनाई हैं। इनकी सात संख्या भी साभिप्राय हैं। ये सोपान (प्रत्येक घाट के) मिले हुए होनेपर भी पृथक् पृथक् हैं। इनकी पृथक् पृथक् महिमाएँ भी कही गई हैं।

पनिघट की महिमा—

कहेउँ परम पुनीत इतिहासा।
सुनत श्रवन छूटहि भवपासा॥
प्रनत कल्पतरु करुना पुंजा।
उपजै प्रीति रामपदकंजा॥
मन क्रम वचन जनित अघ जाई।
सुनहिं जे कथा श्रवन मन लाई॥
मुनि दुर्लभ हरि भगति नर पावहिं बिनहिं प्रयास।
जे यह कथा निरंतर सुनहिं मानि विश्वास॥

राजघाट की महिमा—

राम कथा गिरिजा मैं बरनी।
कलिमलसमनि मनोमलहरनी॥
संसृति रोग सजीवन मूरी।
राम कथा गावहिं श्रुति सूरी॥
मन कामना सिद्धि नर पावा।
जे यह कथा कपट तजि गावा॥
कहहिं सुनहिं अनुमोदन करहीं।
ते गोपद इव भवनिधि तरहीं॥

पंचायती घाट की महिमा—

यह सुभ संभु उमा संवादा।
सुख संपादन समन विषादा॥
भव भंजन गंजन संदेहा।
जनरंजन सज्जन प्रिय एहा॥

गो घाट की महिमा—

पाई न गति केहि पतित पावन
राम भजि सुनु सठ मना।
गनिका अजामिल व्याध गीध
गजादि खल तारे घना॥
आभीर जवन किरात खस
स्वपचादि अति अघ रूप जे।
कहि नाम बारक तेपि पावन
होहिं राम नमामि ते॥

सुभग सोपाना—उपर्युक्त सातो प्रबन्ध इस रामचरितमानस में, उतरने की सुगमता के लिये, सीढ़ी की भांति बनाये गये हैं, जिससे सब प्रकार के अधिकारी, सुभीते के साथ, इस सर में अवगाहन कर सकें।

अन्य वक्ताओं ने भी सात काण्डों की कल्पना तो की, पर सोपान नहीं बनाया। इसलिये अल्पपुरुषार्थ व्यक्तियों के लिये दुर्गम था, यथा—यत्पूर्वं प्रभुनाकृतं सुकविना श्रीशम्भुना दुर्गमम्; पर ग्रन्थ-कर्ताने इसमें प्रसङ्गरूपी फलक (डण्डे) देकर, इसे सोपान बना दिया।

प्रथम प्रबंध में आठ फलक हैं। उसके बाद विश्राम के लिये फर्श (चौकी) है। दो सोपानों के बीच में विश्राम के लिये फर्श होता ही है। सो 'आये राम ब्याहि घर जब ते। बसे अनंद अवध सब तब ते' से 'जबसे राम ब्याहि घर आये। नित नव मङ्गल मोद बधाये' तक पहिला फर्श है।

इसी भाँति द्वितीय सोपान (प्रबंध) में १६ फलक हैं, और द्वितीय तथा तृतीय सोपान के बीच में जो फर्श है, सो 'कलिकाल तुलसी से सठन्हि हठि राम सनमुख करत को' से लेकर 'कलिमल समन दमन मन राम सुजस सुखमूल' तक फैला हुआ है। द्वितीय सोपान और फर्श की सन्धि 'भरत चरित करि नेम तुलसी जो सादर सुनहिं। सीयराम पद प्रेम

अवसि होइ भवरस विरति' तथा—'पुर नर भरत प्रीति मै गाई' इस स्थान पर है।

तीसरे सोपान में बीस फलक हैं, इसके बाद का फर्श 'देखी सुंदर तरुवर छाया। बैठे अनुज सहित रघुराया' से 'आगे चले बहुरि रघुराया' तक है। चतुर्थ सोपान में बारह फलक हैं, और इसके बाद फर्श 'जामवंत कह सुनु हनुमाना' से लेकर 'जामवंत के बचन सुहाये' तक है। पञ्चम सोपान में बारह फलक हैं। इसके बाद का फर्श 'निज भवन गवनेउ सिंधु श्री रघुपतिहिं यह मत भायऊ' से लेकर 'सिंधु बचन सुनि राम, सचिव बोलि प्रभु अस कहेउ' तक है। षष्ठ सोपान में १३ फलक हैं, उसके बाद का फर्श 'प्रभु हनुमतहिं कहेउ बुझाई। धरि बटु रूप अवध पुर जाई' से लेकर 'विप्र रूप धरि पवनसुत आइ गयेउ जनु पोत' तक है। सातवें सोपान में तीन फलक हैं, इसके बाद तल का फर्श है।

एवम् इस रामचरितमानस में सम्वाद रूप चार घाट हैं, प्रबन्धरूप सात सोपान हैं, विश्राम स्थान रूप सात फर्श हैं; और प्रसङ्गरूप चौरासी फलक हैं। इन चौरासी प्रसङ्ग रूप फलकों का उल्लेख ऊपर आ चुका है

सुभीता तो सब कर दिया गया, पर इस सर के पहिले फलक पर भी पाँव रखना कठिन है। पाँव रखने का मतलब आरूढ़ होना, अथवा अपना आधार बनाना है, सो कोई पुण्यवान ही कर सकता है, यथा—

अति हरि कृपा जाहि पर होई।
पाँव देहि एहि मारग सोई॥

यहाँ प्रत्येक सोपान की पृथक् पृथक् महिमा कही गई हैं, कहीं कहीं फलक विशेष की भी महिमा वर्णित है।

प्रथम सोपान की महिमा—

उपवीत ब्याह उछाह मंगल।
सुनि जे सादर गावहीं॥

वैदेहि राम प्रसाद ते जन।
सर्वदा सुख पावहीं ॥
सिय रघुबीर विवाहु जे सप्रेम गावहिं सुनहिं।
तिनकहुँ सदा उछाहु मंगलायतन रामजसु ॥

द्वितीय सोपान की महिमा—

कलिमल समन दमन मन राम सुजस सुखमूल।
सादर सुनहिं जे तिन्ह पर राम रहहिं अनुकूल ॥

तृतीय सोपान की महिमा—

रावनारि जसु पावन, गावहि सुनहि जे लोग।
राम भगति दृढ़ पावहिं, बिनु विराग जप जोग ॥

चतुर्थ सोपान की महिमा—

भव भेषज रघुनाथ जसु, सुनहि जे नर अरु नारि।
तिन्ह कर सकल मनोरथ, सिद्ध करहिं त्रिसिरारि ॥

पञ्चम सोपान की महिमा—

सकल सुमंगल दायक, रघुनायक गुनगान।
सादर सुनहिं ते तरहिं भवसिंधु बिना जलयान ॥

षष्ठ सोपान की महिमा—

समर विजय रघुवीर के, चरित जे सुनहि सुजान।
बिजय बिवेक बिभूति नित, तिनहिं देहिं भगवान ॥

सप्तम सोपान की महिमा—

रघुबंस भूषन चरित यह नर कहहिं सुनहिं जे गावहीं।
कलिमल मनो मल धोइ बिनुश्रम राम धाम सिधावहीं ॥

चौथे फलक की महिमा—

यह चरित जे गावहिं हरिपद पावहिं ते न परहिं भवकूप ॥

पैसठवें फलक की महिमा—

यह संवाद जासु उर आवा।
रघुपति चरन भगति सोइ पावा ॥

तिरासियवें फलक की महिमा—

महाराज कर सुभ अभिषेका।
सुनत लहहिं नर बिरति बिवेका॥
जे सकाम नर सुनहिं जे गावहिं।
सुख संपति नाना विध पावहिं॥
सुरदुर्लभ सुख करि जगमाहीं।
अंतकाल रघुपति पुर जाहीं॥
सुनहिं बिमुक्त बिरत अरु विषई।
लहहिं भगति गति संपति नई॥

इस भांति ये सातों प्रबन्ध सुन्दर सोपान हैं। महात्मा लोग श्रीराम-चरितमानस की जो अनुष्ठानविधि बतलाते हैं वे सभी ठीक हैं, पर मेरी समझ में स्वयम् ग्रन्थकार की कही हुई फलश्रुति के अनुसार पाठ करना फलाभिसन्ध पुरुषों के लिये विशेष उपयुक्त है।

ज्ञान नयन निरखत—मानससर को तो इन आँखों से देखा जाता है, पर श्रीरामचरितमानस का दर्शन तो श्रीगुरुचरणों की दी हुई दिव्यदृष्टि द्वारा ही होता है, श्रीगुरुचरणों के ध्यान से मन को स्थिर करनेवाली ज्योतिष्मती प्रवृत्ति उत्पन्न होती है। वहाँ स्थिति की निर्मलता से वह प्रवृत्ति मणिप्रभारूपाकार में परिणत होती है। उसी आलोक को सूक्ष्म व्यवहित या विप्रकृष्ट अर्थ में लगाने से, उस अर्थ का सम्यक् ज्ञान हो जाता है, तथा—

श्री गुरु पद नख मनिगन जोती।
सुमिरत दिव्य दृष्टि हिय होती॥
दलन मोह तम सो सुप्रकासू।
बड़े भाग उर आवइ जासू॥
उघरहिं विमल विलोचन ही के।
मिटहिं दोष दुख भव रजनी के॥
सूझहिं रामचरित मनि मानिक।
गुपुत प्रकट जह जो जेहिं खानिक॥

जथा सुअंजन अँजि दृग साधक सिद्ध सुजान।
कौतुक देखहिं सैल बन भूतल भूरि निधान॥

मन माना—मन प्रसन्न हो जाता है, यथा—

कौसिक कहेउ मोर मन माना।
इहाँ रहिअ रघुबीर सुजान॥

यथा – मन माना कछु तुमहि निहारी। भाव यह कि ज्ञानदृष्टि द्वारा देखने से, सातों सोपान मणि, माणिक्य, मुक्ता के बने हुए, दिव्य तेजोमय दिखाई पड़ते हैं, यथा--

मनि मानिक मुकुता छवि जैसी।
अहि गिरि गज सिर सोह न तैसी॥

श्री शङ्कर भगवान् की कथा मणि हैं, भगवान् याज्ञवल्क्य की माणिक्य है, भुसुण्डजी की गजमुक्ता है। निदान ज्ञानघाट के सोपान मणिमय, कर्मघाट के माणिक्यमय, उपासनाघाट के गजमुक्तामय और दीनघाट के मुक्तामय दिखाई पड़ते हैं। तब मालूम होता है कि ये क्या वस्तु हैं।

भावार्थ यह कि वेदराशि की भांति ये तेजोमय हैं। भरद्वाज ऋषि को, जब इंद्रदेव ने वेदराशि का दर्शन कराया, तो वे उन्हें तेज के पहाड़ों की भांति दिखाई पड़े। इसी भांति दिव्य दृष्टि पाने से, ये वेदावतार साती सोपान तेजोमय दृष्टिगोचर होते हैं। प्रकाशावरण क्षीण करने में समर्थ होने से तेजोमय कहा।

रघुपति महिमा—भाव यह कि ज्ञानस्वरूप महाविष्णु, जो नानावतार के मूल, भक्तों के दुख नाश करनेवाले, और सब अभीष्टों के पूरा करनेवाले हैं, रघुकुल में राजा दशरथ के पुत्र होकर, पृथ्वी में विराजमान हुए, और रघुपति कहलाये, यथा—ॐ चिन्मयेऽस्मिन् महाविष्णौ जाते दशरथे हरौ। रघोः कुलेऽखिलं राति राजते यो महीस्थितः (तापनीये) अतः उन रघुपति के दो रूप हैं, एक निर्गुण और दूसरा सगुण।

दोनों रूपों की महा महिमा है। सगुण रूप की महिमा भगवती उमा, महारानी कौसल्या, और भुसुण्डि जी ने देखा। यथा—

देखरावा मातहिं निज अद्भुत रूप अखंड।
रोम रोम प्रति लागे कोटि कोटि ब्रह्मंड॥

अगुण महिमा का आगे वर्णन होगा।

अगुन अबाधा—गुणसहित महिमा सविशेष है, और निर्गुण महिमा निर्विशेष है। भगवान् निर्गुण निर्विशेष निर्विकार रहते हुए भी, मायोपाधि से सगुण हो जाते हैं। अतः सगुणावस्था में भी ज्यौं के त्यौं निर्विशेष बने रहते हैं, यथा—

चिदानन्दमय देह तुम्हारी।
बिगतविकार जान अधिकारी॥

अतः सगुण महिमा में तो नखानख निर्गुण महिमा भरी रहती है। इस निर्गुण महिमा का कभी बाध नहीं होता। जल स्वभाव से ही द्रव है, कभी शीत के योग से वह कठिन भी हो जाय, तो उसकी द्रवता कहीं चली नहीं जाती, केवल शीत के कारण अभिभूत मात्र हो जाती है, शीत के हटते ही उसकी द्रवता फिर ज्यौं की त्यौं हो जाती है। इसी भाँति ब्रह्म नित्य निर्गुण है, गुणों की उपाधि से वह सगुण रूप में प्रतीत होता है, उसकी निर्गुणता उस समय अभिभूत सी हो जाती है, पर उसके स्वरूप में भेद नहीं पड़ता, यथा—

जो गुनरहित सगुन सोइ कैसे।
जलु हिम उपल बिलग नहि जैसे॥

तीन प्रकार की सत्ता मानी गई है—प्रातिभासिकी, व्यवहारिकी और पारमार्थिकी। स्वप्न की प्रतिभासिकी सत्ता है, जगत् की व्यवहारिकी सत्ता है, और निर्गुण ब्रह्म की परमार्थिकी सत्ता है। सो प्रातिभासिकी सत्ता का बाध व्यवहारिकी सत्ता से होता है, और व्यवहारिकी सत्ता का बाध परमार्थिकी सत्ता से होता है, पारमार्थिकी सत्ता अर्थात् निर्गुण ब्रह्म का बाध नहीं होता, अतः अगुण महिमा को अबाध कहा।

बरनब सोई—अर्थात् उसी अगुण अबाध महिमाका वर्णन करूँगा। वह निर्गुण ब्रह्म अपनी महिमा में ही प्रतिष्ठित है, अतः उसका साक्षात् वर्णन नहीं हो सकता, उपमा द्वारा वर्णन करने का निश्चय करते हैं। यद्यपि निरूपम की उपमा भी नहीं दी जा सकती, तथापि निषेध रूप से प्रादेश मात्र दिखाया जा सकता है।

बर बारि अगाधा' पहिले कह आये हैं कि —

बरषहिं राम सुजस बर वारी।
मधुर मनोहर मङ्गल कारी॥

सो वर्षा के जल में गहराई इतनी थोड़ी होती है कि उसका वर्णन न करना ही प्राप्त था। अगाध हृदय में आकर रामसुयश भर गया, तो उसमें अथाह गहराई भी आ गई। उसी अथाह गहराई से 'अगुन अबाधा' महिमा को उपमित करते हैं।

मानसरोवर में अथाह जल है। उसी भाँति इस रामचरितमानससर में रघुपति की अगुण अबाध महिमा अथाह है, यथा —

तुम्हहिं आदि खग मसक प्रजंता।
नभ उड़ाहिं नहिं पावहिं अंता॥
तिमि रघुपति महिमा अवगाहा।
तात कबहुँ कोउ पाव कि थाहा॥

इसीलिये इस ग्रन्थ का प्रारम्भ और समाप्ति जलबीज से किया। जलबीज वकार है। वकार से आरम्भ यथा—वर्णानामर्थ संघानाम् और वकार से समाप्ति, यथा—

ते संसार पतङ्ग घोर किरणैर्दह्यन्ति नो मानवाः

निर्गुण और निराकार में ही सर्वगुण और सर्वाकार की कल्पना होती है। जिस भाँति एक वृहदाकार शिला में, पुतली, हाथी, घोड़ा आदि की कल्पना होती है, उसी भाँति उस निर्गुण निराकार में, सर्वगुण और सर्वाकार की कल्पना होती है। उस वृहदाकार शिला में पहिले से ही पुतली, हाथी, घोड़े आदि के

आकर विद्यमान हैं। शिल्पी पाषाण के उन भागों को, जो कि उन आकारों को ढके हुए है, छेनी से काटकर निकाल देता है, कुछ अपने पास से कोई आकार लाकर उस शिला में नहीं डाल देता, इसी भाँति निर्गुण निराकार ब्रह्म एक अनादि अनन्त शिला है, उसीमें सब गुण और सब आकार कल्पित हैं, अतः उसका थाह नहीं है, यथा—

राम काम सतकोटि सुभगतन।
दुर्गा कोटि अमित अरिमर्दन॥
शक्र कोटि सत सरिस विलासा।
नभ सतकोटि अमित अवकासा॥

मरुतकोटि सत विपुल बल, रवि सतकोटि प्रकास।
ससि सतकोटि सुसीतल, समन सकल भवत्रास॥
काल कोटि सत सरिस अति, दुस्तर दुर्ग दुरंत।
धूमकेतु सत कोटि सम, दुराधरष भगवंत॥

प्रभु अगाध सत कोटि पताला।
समन कोटि सत सरिस कराला॥
तीरथ अमित कोटि सम पावन।
नाम अखिल अघ पूग नसावन॥
हिमगिरि कोटि अचल रघुबीरा।
सिंधु कोटि सत सम गम्भीरा॥
कामधेनु सतकोटि समाना।
सकल कामदायक भगवाना॥
सारद कोटि अमित चतुराई।
बिधि सत कोटि सृष्टि निपुनाई॥
विष्णु कोटि सम पालन कर्ता।
रुद्र कोटि सत सम संहर्ता॥
धनद कोटि सत सम धनवाना।
माया कोटि प्रपंच निधाना॥

भार धरन सतकोटि अहीसा।
निरवधि निरुपम प्रभु जगदीसा ॥

छं०—निरुपम न उपमा आन राम समान रामु निगम कहै।
जिमि कोटि सत खद्योत सम रवि कहत अति लघुता लहै ॥

यह सब अगुण महिमा के भीतर है, अतः कहते हैं कि अगुण महिमा का थाह नहीं है, और जिस भाँति अनेक नदियाँ मानससरोवर से निकली हैं, और निरन्तर उनके द्वारा जल बाहर जाया करता है; पर मानससरोवर ज्यों का त्यों है, चुकता नहीं; इसी भाँति कितनी प्रातिभाषिकी और व्यवहारिकी सत्ताएँ सतत उत्पन्न होकर विलीन हुआ करती हैं, पर पारमार्थिक सत्ता अक्षुण्ण रूप से स्थिर है, इसका बाध होता ही नहीं। अतः अगाध है।

राम सीय जस सलिल सुधासम।
उपमा बीच बिलास मनोरम ॥ १ ॥
पुरइनि सघन चारु चौपाई।
जुगुति मंजु मनि सीप सुहाई ॥ २ ॥

अर्थ—रामसीता का यश रूपी जल अमृत सा है। उसमें उपमाएँ सुन्दर लहर (तरंग) के कार्य्य वर्ग हैं। सुन्दर चौपाइयाँ घनी पुरइन हैं, और सुन्दर युक्तियाँ ही सुन्दर मोतीवाली सीपियाँ हैं।

रामसीय—रामजी सच्चिदानन्द ब्रह्म हैं, और सीताजी उनकी आल्हादिनी शक्ति हैं, यथा—जागे जग-मंगल सुख दाता। शक्ति और शक्तिमान् में भेद नहीं होता, अतः राम और सीता में भेद नहीं है, यथा—

गिरा अरथजल बीचि सम, कहिअत भिन्न-नभिन्न।
वंदौं सीताराम पद, जिन्हहिं परम प्रिय खिन्न ॥

अतः सीतायश और रामयश भी अभिन्न हैं, पृथक् किये जा सकते नहीं।

दूसरी बात यह है कि रामसीय कहकर सगुण महिमा द्योतित किया। निर्गुण ब्रह्म सगुण होते ही युगल मूर्त्ति रूप में हो जाते हैं।

(१) शक्तिवालों के मूल राम हैं यथा—

सम्भु विरंचि विष्णु भगवाना।
उपजहिं जासु अंश ते नाना॥

और (२) शक्तियों की मूल सीताजी हैं, यथा—

जासु अंस उपजहिं गुन खानी।
अगनित लच्छि उमा ब्रह्मानी॥

जससलिल—निर्मल पावन और मधुर होने से यश को सलिल कहा। रामसीय की सरलता को देखकर स्वयम् कैकेयी जी को बड़ा पछतावा हुआ कि मैंने ऐसे को वन देकर बड़ा बुरा किया, यथा—

लखि सिय सहित सरल दोउ भाई।
कुटिल रानि पछितानि अघाई॥

भगवती कौसिल्या सुनयनाजी से कहती हैं 'ईस प्रसाद असीस तुम्हारी। सुत सुतवधूँ देव सरि वारी।' अतः इनके यश को भी सलिल से उपमित किया।

सुधासम—मेघ का जल ही एकत्रित होकर तालाब में आने से ही वह जल मानो दूसरा हो जाता है। उसके गुण तथा स्वाद में सूक्ष्म भेद पड़ जाता है। इस मर्म के जानकार ग्रंथकर्त्ता ने, साधु मुखच्युत रामयश का माधुर्य्य वर्णन करने पर भी, सर में आने से फिर माधुर्य्य का वर्णन किया, और उसकी अमृत से उपमा दी। मेघ के जल का अव्यक्त रस होता है, सर में एकत्रित होने पर शरद ऋतु में इस जल का रस व्यक्त हो जाता है, अतः माधुर्यातिशय से सुधा की उपमा दी गई।

प्रेम भगति जो बरनि न जाई।
सोइ मधुरता सुसीतलताई॥

'प्रेमाभक्ति में ही माधुर्य है' इस सिद्धांत में त्रुटि नहीं है। यहाँ रामजानकी में प्रेमातिशय होने से ही उनके यश को सुधासम कहा।

प्रेमातिशय ही सर्वत्र अभेद का कारण होता है। रामसीय में अलौकिक प्रेम है, यथा—

सियराम अवलोकनि परस्पर प्रेमु काहु न लखि परै।
मनबुद्धि बरबानी अगोचर प्रकट कवि कैसे करै॥

तथा—'मन त्रिहँसे रघुवंसमनि प्रीति अलौकिक जानि।' अतः उस प्रेम को अलौकिक मधुर सुधा से उपमित किया।

जिस भांति मेघ का जल मधुर मनोहर मङ्गलकारी था, उसी भांति इस सरका भी जल मधुर मनोहर मङ्गलकारी है। 'सुखद, सीतरुचि चारु-चिराना' कहकर मङ्गलकारी कहा, और अब सुधा की उपमा देकर मधुर मनोहर कह रहे हैं।

यहाँ अगुन अबाध महिमा को अगाध जल कहकर, और रामसीय यश को अमृत सा जल कहकर, दोनों महिमाओं का सम्यक रूप से एक होना कहा। रामयश रूपी जल का अगुण अबाध होना गहराई है, और सीयराम यश का ऐक्य अमृत सा मिठास है।

बीचबिलास—यद्यपि प्राचीन प्रतियों में 'बीच' पाठ है, तथापि 'वीचि' पाठ विशेष उपयुक्त प्रतीत होता है। यह भी शङ्का उठाई जाती है कि जब विलास कहा ही है, तब बीचि कहने की क्या आव-श्यकता है? अतः यह अर्थ करना चाहिये कि बीच में जो उपमाएँ हैं, वे ही जलके विलास (कार्य्य वर्ग) अर्थात् लहर हैं।

इसमें सन्देह नहीं कि इस भांति भी अर्थ हो सकता है, और प्राचीन पाठ की रक्षा भी हो जाती है, पर 'बीचि बिलास' पद का प्रयोग तरंगों के उठने के अर्थ में अन्यत्र भी पाया जाता है, यथा—

एहि अवसर मंगलु परम, सुनि रहसेउ रनिवास।
सोभित लखि विधु बढ़त जनु, वारिधि वीचि विलास॥

सम्भव है कि लिखने में मात्रा छूट गई हो।

उपमा मनोरम—उपमा अलङ्कारों का प्राण है, और श्रीराम-चरितमानस में बहुत से अलङ्कार पाये जाते हैं। अतः यहाँ उपमा

अलङ्कार मात्र का उपलक्षण है। अलङ्कार का अर्थ ही शोभा बढ़ाने वाला है। इससे शब्दार्थ की शोभा बढ़ती है। जो अलङ्कार का नाम भी नहीं जानते, वे भी अलङ्कारों का प्रयोग स्वभाव से ही करते हैं। पर अलङ्कारों के जान लेने से आनन्द अधिक आता है, कवि के हृदय-गत भावों के समझने में सुभीता होता है, और व्यर्थ की शङ्काएँ नहीं उठतीं। जो अत्युक्ति अलङ्कार जानता है, उसे 'सर्बस दान दीन्ह सब काहू। जेहि पावा राखा नहिं ताहू।' में यह शङ्का न उठेगी कि उस धन की फिर क्या गति हुई। वह तो उस उत्साह का अनुभव करेगा, जिससे कि सब लोग सब कुछ लुटा रहे थे।

जिस भांति जल ही रमणीय आकार में व्यक्त होकर लहर हो जाता है, उसी भांति अर्थ रमणीय आकार में व्यक्त होकर अलङ्कार रूप हो जाता है।

अर्थालंकार

(१)

उपमालक्षण—उपमेयरु उपमान जहँ वाचक धर्म सुचारि। पूरन उपमाहीन तहँ लुप्तोपमा विचारि। एहि विधि सब समता मिले उपमा सोई जान।

(क) पूर्णोपमा ल०—तरुन अरुन अम्बुज सम चरना। यहाँ चरन उपमेय, अम्बुज उपमान, अरुन धर्म, और सम वाचक है।

(ख) लुप्तोपमा—

ल० वाचक धर्म अरु बर्ननिय है चौथो उपमान।
इक बिनु द्वै बिनु तीन बिनु लुप्तोपमा प्रमान॥

यथा (I) वदन मयंक ताप त्रय मोचन (वाचक लुप्ता)
यहाँ वदन उपमेय, मयंक उपमान, तापत्रय मोचन धर्म, वाचक नहीं कहा।

(II) प्रभुभुज करिकर सम दसकंधर (धर्म लुप्ता) यहाँ प्रभुभुज उपमेय, करिकर उपमान, सम वाचक है, धर्म नहीं कहा।

(III) नखद्युति भगत हृदय तम हरना। (उपमान लुप्ता) यहाँ नखद्युति उपमेय, भगत हृदय तम हरना धर्म, उपमा नहीं कहा।

(२) अनन्वय ल०—उपमेयहि उपमान जब कहत अनन्वय ताहि, यथा– निरवधि गुन निरुपम पुरुषु भरतु भरत सम जानि।

(३) प्रतीप, प्रथम ल०—सो प्रतीप उपमेय को कीजै जब उपमान, यथा उतरि नहाये जमुन जल जो सरीर सम स्याम।

प्रतीप द्वितीय, ल०—उपमेय को उपमान ते आदर जबै न होय, यथा—जिन्हके बल कर गर्व तोहि अइसे मनुज अनेक।

प्रतीप तृतीय ल०—अन आदर उपमेय ते जब पावै उपमान यथा--

कुलिसहु चाहि कठोर अति कोमल कुसुमहु चाहि।
चित्त खगेस रामकर समुझि परै कहु काहि॥

प्रतीप चतुर्थ, ल०—उपमेय को उपमा न जब, समता लायक नाहिं, यथा—सीय वदन सम हिमकर नाही।

प्रतीप पञ्चम, ल०—व्यर्थ होय उपमान जब वर्ननीय लखि सार, यथा—कोटि काम उपमा लघु सोऊ।

(४) रूपक, ल०—

वरनत विषयी विषय को करि अभिन्न तद्रूप।
अधिक हीन सम उक्ति सो रूपक त्रिविध अनूप॥

रूपक अभेद—अधिक, यथा— गुरुपद रज मृदु मंजुल अंजन। यहाँ अञ्जन की सहज स्थिति आरोप के बाद 'मृदु' कहकर अधिक कही गई।

न्यून,यथा– अति खल जे विषयी बक कागा। यहाँ बक काग की स्थिति आरोप के बाद 'विषयी' कहकर न्यून कही गई।

सम, यथा --

संपति चकई भरत चक मुनि आयसु खेलवार।
तेहि निसि आश्रम पींजरा राखे भा भिनुसार॥

रूपक तद्रूप—अधिक, यथा –

हरिहर कथा विराजत बेनी।
सुनत सकल मुद मंगल देनी॥

न्यून, यथा—

द्वै भुज कर हरि रघुबरसुन्दर वेष।
एक जीभ कर लछिमन दूसर शेष। (बरवा)
सम, यथा—केहरि सावक जन मन बन के।

(६) परिणाम, ल०—करै क्रिया उपमान ह्वै वर्ननीय परिनाम, यथा—करकमलनि धनु सायकु फेरत। यहाँ उपमान उपमेय के साथ होकर धनुष फेरने में समर्थ हुआ।

(७) उल्लेख- प्रथम ल०—सो उल्लेख जु एक को बहु समुझै बहु रीति, यथा—

देखहिं रूप महा रनधीरा।
मनहुँ वीर रस धरे सरीरा॥
डरे कुटिल नृप प्रभुहिं निहारी।
मनहु भयानक मूरति भारी॥
रहे असुर छल छोनिप वेषा।
तिन्ह प्रभु प्रगट काल सम देखा॥ इत्यादि

द्वितीय ल०—बहुविधि बरनै एक को बहु गुन सों उल्लेख, यथा—

राम काम सत कोटि सुभग तन।
दुर्गा कोटि अमित अरि मर्दन॥
सक्र कोटि सत सरिस विलासा।
नभ सत कोटि अमित अवकासा॥ इत्यादि

(८) स्मरण, यथा —

बीच बास करि जमुनहिं आये।
निरखि नीरु लोचन जल छाये॥

(९) भ्रम, यथा—

कपि करि हृदय विचार दीन्ह मुद्रिका डारि तब।
जनु असोक अंगार दीन्ह हरषि उठि कर गहेउ॥

(१०) सन्देह, यथा—

की तुम तीन देव महँ कोऊ।
नर नारायन की तुम दोऊ॥ इत्यादि

(११) अपन्हुति (शुद्ध), ल०— धरम दुरै आरोप ते शुद्ध अपन्हुति जान, यथा—बन्धु न होइ मोर यह काला।

(हेतु) ल०—वस्तु दुराएँ जुक्तिसों, हेतु अपन्हुति होय, यथा—मुकुट न होहिं भूप गुनचारी।

साम दाम अरू दंड विभेदा।
नृप उर बसहिं नाथ कह वेदा॥
नीति धरम के चरन सुहाये।
अस जिय जानि नाथ पहिं आये॥

धर्म हीन प्रभुपद विमुख काल विवस दससीस।
तेहि परिहरि गुन आए सुनहु कोसलाधीस॥

(पर्यस्त) ल०—पर्यस्त जुगुन एक को, और विषय आरोप, तथा—

नाँघि सिंधु हाटक पुर जारा।
निसिचरगन बधि विपिन उजारा॥
सो सब तब प्रताप रघुराई।
नाथ न कछू मोरि प्रभुताई॥

(भ्रांत), ल०—भ्रान्त अपन्हुति वचन सों, भ्रम जब परको जाय, यथा—

कह प्रभु हँसि जनि हृदय डेराहू।
लूक न असनि केतु नहिं राहू॥
ये किरीट दसकंधर केरे।
आवत बालि तनय के प्रेरे॥

(छेक), ल०—छेकापन्हुति जुक्ति करि परसों बात दुराय, यथा—

कछु न परीछा लीन्ह गोसाईं ।
कीन्ह प्रनाम तुम्हारिहि नाईं ॥
जो तुम कहा सो मृषा न होई ।
मोरे मन प्रतीति अति सोई ॥

(कैतव), ल०— कैतव पन्हुति एक को मिस करि बरनत आन, यथा—

पठै मोह मिस खगपति तोहीं ।
रघुपति दीन्हि बड़ाई मोहीं ॥

(१२) उत्प्रेक्षा, ल०—उत्प्रेक्षा संभावना वस्तु हेतु फल लेखि । सो वस्तु के दो भेद । उक्त विषया और अनुक्त विषया, एवम् हेतु और फल के भी दो भेद होते हैं, सिद्धास्पदा और असिद्धास्पदा ।

(क) वस्तु—उक्त विषया, यथा—

करत बतकही अनुज सन मन सिय रूप लुभान ।
मुख सरोज मकरन्द छवि करत मधुप इव पान ॥

अनुक्त विषया, यथा—

सुनि गुरु गिरा सुमंगल मूला ।
भयउ मनहु मारुत अनुकूला ॥

(ख) हेतु – सिद्धास्पदा, यथा—

चारु चरन नख लेखति धरनी ।
नूपुर मुखर मधुर कवि बरनी ॥
मनहु प्रेम बस बिनती करहीं ।
हमहिं सीय पद जनि परिहरहीं ॥

यहाँ 'बिनती करना' अहेतु है उसे हेतु माना, नूपुर का बजना स्वाभाविक है ।

असिद्धास्पदा, यथा—

इन्हहिं देखि विधि मन अनुरागा।
पटतर जोगु बनावइ लागा॥
कीन्ह बहुत श्रम ऐक न आये।
तेहि इरिषा बन आनि दुराये॥

यहाँ अहेतु को हेतु तो माना, पर विषय असिद्ध है।

(ग) फल—सिद्धास्पदा, यथा—

अति कटु बचन कहति कैकेयी।
मानहु लोन जरे पर देई॥

असिद्धास्पदा, यथा—जनु सब साँचे होन हित भये सगुन एक बार। सांचे होने की इच्छा फल है।

(१३) अतिशयोक्ति (रूपक) ल०—अतिशयोक्ति रूपक जहाँ केवल ही उपमान, यथा—

अरुन पराग जलजु भरि नीके।
ससिहि भूख अहि लोभ अमीके॥

सम्बन्ध ल०—सम्बन्धातिसयोक्ति जहँ देत अजोगहिं जोग, यथा—

जो संपदा नीच गृह सोहा।
सो बिलोकि सुरनायक मोहा॥

(१३) अतिशयोक्ति—अक्रम, ल०—अतिसयोक्ति अक्रम जबै कारज कारन संग, यथा—आकर्ष्यो सियमन समेत हरि हरख्यो जनक हियो!

चपला, ल०—चपलात्युक्ति जो हेतु के होत नाम ही काज, यथा—

सुनत बचन उठि बैठ कपीसा।
कहि जय जयति कोसलाधीसा॥

अत्यन्त, ल०—अत्यन्ततिसयोक्ति सो, पूर्वापर क्रम नाहि, यथा—

पद पखारि जलपान करि आपु सहित परिवार।
पितर पार करि प्रभुहि पुनि मुदित गयो लइ पार॥

(१४) तुल्ययोगिता—प्रथम ल०—एक शब्द मैं हित अहित, यथा—

जे हमरे अरि मित्र उदासी।
सबहिं राम प्रिय जेहि विधि मोही ॥

द्वितीय, ल०—बहु मैं एकै वानि, यथा—

जासु नाम बल संकर कासी।
देत सबहिं सुभगति अविनासी ॥

तृतीय, ल०—बहुसों समता गुननि करि, यथा—

नित्य नेम करि अरुन उदय जब कीन्ह।
निरखि निसाकर नृप मुख भये मलीन ॥

(१५) दीपक, ल०—सो दीपक निज गुननि सो, वर्न्य उतर इक भाय, यथा—

संग ते जती कुमंत्र ते राजा।
मान तें ज्ञान पान ते लाजा ॥
प्रीति प्रनय बिनु मदते गुनी।
नासहिं वेग नीति अस सुनी ॥

यहाँ 'राजा' प्रस्तुत है, शेष सब अप्रस्तुत हैं।

(१६) दीपकावृत्ति ल०—दीपक आवृति तीनि विधि, आवृति पद की होय, यथा—सर्व सर्वगत सर्व उरालाय।

द्वितीय, ल०—पुनि है आवृत्ति अर्थ की, यथा—कूजहिं कोकिल गुंजहिं भृंगा।

तृतीय, ल०—पद अरु अर्थ दुहून की आवृत्ति तीजै लेखि, यथा—

पुरी विराजति राजति रजनी।
रानी कहहिं विलोकहु सजनी ॥

(१७) प्रतिवस्तूपमा, ल०—प्रतिवस्तूपम समझिये दोऊ वाक्य समान, यथा—

भलो भलाइहि पै लहैं, लहैं निचाइहि नीचु।
सुधा सराहिय अमरता, गरल सराहिअ मीचु ॥

यहाँ दोनों वाक्य उपमेय और उपमान स्वरूप हैं, धर्म एकही है, समानार्थवाची शब्दों में कथन है।

(१८) उदाहरण, ल०—जहाँ बिम्ब प्रतिबिम्ब सो दुहू वाक्य दृष्टान्त, यथा—

बड़े सनेह लघुन्ह पर करहीं।
गिरि निज सिरनि सदा तृन धरहीं॥

(१९) निदर्शन, प्रथम ल०—कहिये त्रिविध निदर्शना वाक्य अर्थ सम दोय, यथा—

सुनु खगेश हरि भगति बिहाई।
जे सुख चाहहिं आन उपाई॥
ते सठ महा सिंधु बिनु तरनो।
पैर पार चाहहिं जड़ करनी॥

द्वितीय, ल०—एक विषय पुनि और गुन और वस्तु में होय, यथा-

रघुपति विरह सविष सर भारी।
तकि तकि मार बार बहु मारी॥ तथा—
अस कहि फिर चितये तेहिं ओरा।
सियमुख ससि भये नयन चकोरा॥ तथा—
राजकुँअर दोउ सहज सलोने।
इन्हते लही दुति मरकत सोने॥

तृतीय, ल०—कहिये कारज देखि कछु भलो बुरो फल भाव। तथा-

संग लाइ करिनी करि लेहीं।
मानहु मोहिं सिखावनु देहीं॥

(२०) व्यतिरेक, ल० व्यतिरेकजु उपमान ते उपमेयाधिक देखि। यथा—

निज परिताप द्रवै नवनीता।
परदुख द्रवहिं संत सुपुनीता॥

(२१) सहोक्ति, ल०—सो सहोक्ति दोउ साथ ही वरने रस सरसाइ, यथा—

वलु प्रताप वीरता बड़ाई।
नाक पिनाकहि संग सिधाई॥

(२२) विनोक्ति, प्रथम ल०—है विनोक्ति द्वै भाति की प्रस्तुत कछु बिन छीन, यथा—

वादि वसन विनु भूषन भारू।
वादि विरति विनु ब्रह्म विचारू॥

द्वितीय, ल०—अरु सोभा अधिकी लहै प्रस्तुत कछु बिनुहीन यथा—संत हृदय जस गत मद मोहा।

(२३) समासोक्ति, ल०—समासोक्ति अप्रस्तुत फुरै जो प्रस्तुत माझ, यथा—

लोचन मग रामहिं उर आनी।
दीन्हें पलक कपाट सयानी॥
मृग वधि बंधु सहित हरि आये।

(२४) परिकर, ल०—है परिकर आशय लिये जहाँ विशेषण होय, यथा—

वदन मयंक तापत्रय मोचन।

(२५) परिकरांकुर, ल०—साभिप्राय विशेष जब परिकर अंकुर नाम, यथा—

सुनहिं विनय मम विटप असोका।

(२६) श्लेष, ल०—श्लेष अलंकृत अर्थ बहु एक शब्द में होय, यथा—

रावन सिर सरोज वन चारी।
चलि रघुबीर सिलीमुख धारी॥

(२७) अप्रस्तुत प्रशंसा, प्रथम ल०—अलंकार द्वै भाँतिको अप्रस्तुत परसंस।

इक वर्नन प्रस्तुत विना' यथा—

कुपथ माँग रुज व्याकुल रोगी।
वैद न देइ सुनहु मुनि जोगी॥

द्वितीय—दूजो प्रस्तुत अंश, यथा—

गर्भन के अर्भक दलन परसु मोर अतिघोर।

(२८) पर्यायोक्ति, प्रथम ल०—पर्यायोक्ति प्रकार है, कछु रचना सो बात, यथा—

सीता हरन तात जनि, कहेहु पितासन जाइ।
जौं मैं राम तो कुल सहित, कहेहि दसानन आइ॥

द्वितीय ल०—मिस करि कारज साधिये जो है मनहिं सोहात, यथा—

देखन मिस मृग बिहंग तरु फिरै बहोरि बहोरि।
निरखि निरखि रघुबीर छबि, बाढ़ै प्रीति न थोरि॥

(२६) व्याजस्तुति, ल०—व्याजस्तुति निंदा विषै जहाँ बड़ाई होय, यथा—

तरनिउँ मुनि घरनी होइ जाई।
बाट परै मोरि नाव उड़ाई॥
एहिं प्रतिपालउँ सब परिवारू।
नहिं जानउँ कछु और कबारू॥ तथा—
अहो मुनीस महा भट मानी।

(३०) व्याज निन्दा, ल०—व्याज निंद निंदा विषय निंदा औरै होय, यथा—

वेगि देखाउ मूढ नत आजू।
उलटौं महि जहँ लगि तव राजू॥

(३१) आक्षेप, प्रथम ल०—तीन भाँति आक्षेप है, एक निषेधाभास, यथा—

सानुज पठइअ मोहि बन, कीजिय सबहिं सनाथ।
नतरु फेरिअहिं बंधु दोउ, नाथ चलौं मैं साथ॥

द्वितीय ल०—पहिले कहिये आप कछु बहुरि फेरिये तासु।

यथा—

कवि न होउँ नहि चतुर कहावों।
मति अनुरूप राम गुन गावों॥

तृतीय ल०—दुरै निषेधजु विधि वचन, यथा—

राजु देन कहि दीन्ह बनु मोहि न सों दुख लेस।
तुम बिनु भरतहिं भूपतिहिं प्रजहिं प्रचंड कलेस॥

(३२) विरोधाभास ल०—भासै जवै विरोध सो वहै विरोधाभास, यथा—

भए अलेख सोच बस लेखा।

(३३) विभावना (१) ल०—होत छ भांति विभावना कारन विनही काज, यथा—

बिनु पंद चलै सुनै बिनु काना।
करबिनु करम करै विधि नाना॥

(२) ल०—हेतु अपूरन ते जबै कारज पूरन होय, यथा—

काम कुसुम धनु सायक लीन्हे।
सकल भुवन अपने बस कीन्हे॥

(३) ल०—प्रतिबंधक के होत हू कारज पूरन होय, यथा—

देखत तोहि अच्छ तेहिं मारा।

(४) ल०—जबै अकारज वस्तुते कारज प्रगटहिं होत, यथा—

बोरहिं आनहिं बूड़हिं जोई।
भये उपल बोहित समतेई॥

(५) ल०—काहू कारन ते कबहुं कारज होइ विरुद्ध, यथा—

जे हित रहे करत तेइ पीरा।
उरग स्वास सम त्रिविध समीरा॥

(६) ल०—पुनि कछु कारज ते जबै उपजै कारन रूप, यथा—

जगत पिता मैं सुत करि जाना।

(३४) विशेषोक्ति, ल०- विशेषोक्ति जब हेतु ते कारज उप
नाहिं, यथा—

सकै उठाइ सुरासुर मेरू।
सोउ हिय हारि गएउ करि फेरू॥

(३५) असंभव, ल०—कहै असंभव होत जब बिनु संभाव
काज, यथा—

अति सुकुमार जुगल मेरे बारे।
निसिचर सुभट महाबल भारे॥

(३६) असंगति, (१) ल०—तीनि असंगति कार्य्य अरु कार
न्यारे ठाँव, यथा—

जिन्ह बीथिन्ह विहरैं दोउ भाई।
थकित होहिं सब लोग लुगाई॥

(२) ल०—और ठौर ही कीजिये और ठौर को काम, यथा—

ते पितु मातु कहहु सखि कैसे।
जिन्ह पठए वन बालक ऐसे॥

(३) ल०—और काज आरंभिये औरे कीजे दौर, यथा—

धरम हेतु अवतरेहु गोसाईं।
मारेहु मोहिं व्याध की नाईं॥

(३७) विषम (१) ल०—विषम अलंकृति तीनि विधि अ
मिलते को संग, यथा—

कस कीन्ह वर बौराह विधि जेहि तुमहिं सुंदरता दई।

(२) ल०—कारन को रंग और कछु कारज औरै रंग, यथा—

उपजे जदपि पुलस्त्य कुल पावन अमल अनूप।
तदपि महीसुर स्राप बस भये सकल अघरूप॥

(३) ल०—और भलो उद्यम किये होत बुरो फल आय, यथा—

सीतल सिख दाहक भई कैसे।
चकइहि सरद चंद निसि जैसे॥

(३८)—सम (१) ल०—अलंकार सम तीनि विधि जथा जोग को संग, यथा--

जस दूलह तसि बनी बराता ।

(२) ल०—कारज में सब पाइये कारनहीं को रंग, यथा—

कस न कहहु अस रघुकुल केतू ।
तुम्ह पालक संतत श्रुति सेतू ॥

(३) ल०—श्रम बिनु कारन सिद्ध जब उद्यम करतै होय, यथा—

छुवतहिं टूट पिनाक पुराना ।

(३६) विचित्र, ल०—इच्छा फल विपरीत की कीजै जतन विचित्र, यथा—

तउ मैं जाइ वयरु हठि करऊँ ।
प्रभु सर प्रान तजे भव तरऊँ ॥

(४०) अधिक, (१) ल०—अधिकाई आधेय की जब अधार ते होय, यथा—

बहुत उछाह भवन अति थोरा ।
मानहु उमगि चला चहुँ ओरा ॥

(२) ल०—जौ अधार आधेय ते अधिक अधिक ये दोय, यथा—

भुवन चारिदस भरा उछाहू ।
जनकसुता रघुवीर बिआहू ॥

(४१) अल्प, ल०--अल्प अल्प आधेय ते, सूछम होय अधार, यथा—

अब जीवन कै है कपि-आस न कोइ ।
कनगुरिया कर मुंदरी कंकन होइ ।

(४२) अन्योन्य, ल० - अन्योन्यालंकार है अन्योन्यहि उपकार, यथा—

मुनि रघुवीर परस्पर नवहीं ।
बचन अगोचर सुख अनुभवहीं ॥

(४३) विशेष, (१) ल०—तीन प्रकार विशेष हैं अनाध आधेय, यथा—रहे छाइ नभ सिर अरु बाहू ।

(२) ल०—थोरै कछु आरंभ जब अधिक सिद्धि को देइ, यथा-

कपि तव दरस सकल दुख बीते ।
मिले आजु मोहि राम पिरीते ॥

(३) ल०—वस्तु एक को कीजिये वर्नन ठौर अनेक, यथा—

जँह चितवहि तहँ प्रभु आसीना ।
सेवहिं सिद्ध मुनीस प्रवीना ॥

(४४) व्याघात (१) ल०—व्याघात जो कछु और ते कीं कारज और, यथा—

नाम प्रभाउ जान सिव नीको ।
कालकूट फल दीन्ह अमीको ॥

(२) ल०—बहुरि विरोधी ते जबै काज लाइये ठौर, यथा—

ऐसेउ वचन कठोर सुनि जौं न हृदय बिलगान ।
तौ प्रभु विषम वियोग दुखु सहिहहिं पांवर प्रान ॥

(४५) कारणमाला, ल०—कहिये गुम्फ परम्परा कारन की ज होत, यथा—

धर्म तें विरति जोग तें ज्ञाना ।
ज्ञान मोच्छप्रद वेद बखाना ॥

(४६) एकावली, ल०—गहत मुक्त पदरीति जब एकावली त मानु, यथा—

विषय करन सुर जीव समेता ।
सकल एक तें एक सचेता ॥

(४७) मालादीपक, ल०—दीपक एकावलि मिले मालादीपक नाम, यथा—

जगु जप राम रामु जप जेही ।

(४८) सार—ल० एक एक ते सरस जब अलंकार तब सार, यथा—

तिन्हमहँ द्विज द्विजमह श्रुतिधारी।
तिन्हमहँ निगम धर्म अनुसारी।

(४९) यथासंख्य, ल०—यथा संख्य वर्नन विषें वस्तु अनुक्रम सग, यथा—

अर्थ अनूप सुभाव सुभासा।
सोइ पराग मकरंद सुवासा॥

(५०) पर्याय (१) ल०—है पर्याय अनेक को क्रम सो आश्रय एक, यथा—

जनक लहेउ सुख सोच विहाई।

(२) ल०—फिरि क्रम से जब एक वह आश्रय धरै अनेक,यथा—

मनि मानिक मुकुता छवि जैसी।
अहि गिरि गज सिर सोह न तैसी॥
नृप किरीट तरुनी तनु पाई।
लहहिं सकल सोभा अधिकाई॥

(५१) परिवृत्ति –ल०—परिवृत्ति लीजै अधिक थोरोई कछु देइ, यथा—

तारा विकल देखि रघुराया।
दीन्ह ज्ञान हरि लीन्ही माया॥

(५२) परिसंख्या, ल०—परिसंख्या इक थल वरजि दूजेथल ठहराय, यथा—

दंड जतिन्ह कर भेद जहँ, नर्तक नृत्य समाज

(५३) विकल्प, ल०—है विकल्प यह कै वहै, इहि विधि को विरतंत, यथा—

की तजि मान अनुज इव प्रभु पद पंकज भृंग।
होहि कि राम सरानल खल कुल सहित पतंग॥

(५४) समुच्चय (१) ल० दोय समुच्चय भाव वहुँ कहुँ उपजै इक सङ्ग, यथा—

परम बिनीत सकुचि मुसुकाई ।
बोले गुरु अनुसासन पाई ॥

(२) ल०—एक काज चाहै करयौ ह्वै अनेक इक सङ्ग, यथा—

मुनिगन मिलन बिसेष बन,
सबहि भाँति हित मोर ।
तेहि महँ पितु आयसु बहुरि,
सम्मत जननी तोर ॥

(५५) कारकदीपक, ल०—कारक दीपक एक में क्रमते भाव अनेक, यथा—

लेत चढ़ावत खैंचत गाढ़े ।
काहु न लखा देखि सब ठाढ़े ॥

(५६) समाधि, ल०—सो समाधि कारज सुगम, और हेतु मिलि होत, यथा—

हरि प्रेरित तेहि अवसर, चले पवन उनचास ।
अट्टहास करि गर्जा, कपि बढ़ि लागु अकास ॥

(५७) प्रत्यनीक, ल०—प्रत्यनीक जो प्रबल रिपु ताही सन करि जोर, यथा—

पुनि दस कंठ क्रुद्ध होइ छाँड़ी सक्ति प्रचण्ड ।
चली बिभीषन सनमुख मनहुँ काल कर दण्ड ॥

(५८) काव्यार्थापत्ति, ल०—काव्यार्थापत्ती कहैं कवि कैमुतक न्याय, तथा

जितेउ सुरासुर तब श्रम नाहीं ।
नर बानर केहि लेखे माहीं ॥

(५९) काव्यलिङ्ग, ल०—काव्यलिङ्ग जब युक्ति सो अर्थ समर्थ न होय, यथा

सो नर क्यों दसकन्ध बालि बध्यो जेहि एक सर ।
बीसहु लोचन अंध धिग तव जन्म कुजाति जड़ ॥

(६०) अर्थान्तरन्यास, ल०—सामान्यते विशेष दृढ़ तव अर्थान्तरन्यास, यथा—

राम भजन बिनु मिटहि किकामा ।
थल विहीन तरु कबहुँ कि जामा ॥

(६१) विकस्वर, ल०—विकस्वर होत विशेष जब फिर सामान्य विशेष, यथा—

अनुज गहे पद बारहिं बारा ॥
उमासंत कइ इहइ बड़ाई ।
मंद करत जो करै भलाई ॥
तुम्ह पितु सरिस भलेहि मोहि मारा ।
राम भजे हित नाथ तुम्हारा ॥

(६२) प्रौढ़ोक्ति, ल०—प्रौढ़ उक्ति उत्कर्ष को करै अहेतुहि हेतु, यथा—काम कलभ कर भुजबल सींवा ।

(६३) सम्भावना, ल०—जौ यों होय तो होय यौं सम्भावना विचार, यथा—

जौ तुम्ह अवतेउ मुनि की नाईं ।
पदरज सिर सिसु धरत गोसाईं ॥

(६४) मिथ्याध्यवसिति-मिथ्याध्यवसिति कहत कछु मिथ्या कल्पना रीति, यथा—

मठ पीठि जामहिं वरु वारा ।
वंध्यासुत वरु काहुहि मारा ॥ तथा

फिरि न गयेउ सुग्रीव पहिं तेहि भय रहा लुकाइ ।

(६५) ललित, ल०—ललित कह्यौ कछु चाहिये, ताही को प्रतिबिंबु, यथा—सुनिअँ सुधा देखियहिं गरल सब करतूति कराल ।

(६६) प्रहर्षण, (१) ल० —तीन प्रहर्षण जतन बिनु, वांछित फल जौ होय, यथा

चितवत पंथ रहेउँ दिन राती ।
अब प्रभु देखि जुड़ानी छाती ॥

(२) ल० —वांछित हू ते अधिक फल श्रम बिनु लहिए सोय, यथा—

सुनत वचन बिसरे सब दूखा ।
तृषावन्त जिमि पाइ पियूखा ॥

(३) ल० —सोधत जाके जतन को वंस्तु चढ़े कर सोइ, यथा —

एहि विधि मन विचार कर राजा ।
आइ गए कपि सहित समाजा ॥

(६७) विषाद, ल० —सो विषाद चित चाह ते उलटो कछु होइ जाय, यथा—

वचन विनीत मधुर रघुबर के ।
सर सम लगे मातु उर करके ॥

(६८) उल्लास, ल० —गुन औगुन जब एक ते और धरै उल्लास, यथा —

(गुन ते गुन)

जे हरषहिं पर सम्पति देखी ।

(दोष ते दोष)

दुखित होहिं पर विपति बिसेखी ॥

(गुन ते दोष)

जरहिं सदा पर सम्पति देखी ।

(६९) अवज्ञा, ल० —होत अवज्ञा और के लगत न गुन अरु दोष, यथा—

विधिबस सुजन कुसंगति परहीं ।
फनिमनि सम निज गुन अनुसरहीं ॥

(७०) अनुज्ञा, ल०—होत अनुज्ञा दोष को जब लीजै गुन मानि, यथा—मुनि श्राप जो दीन्हा अति भल कीन्हा परम अनुग्रह मैं माना।
देखेउँ भरि लोचन हरि भवमोचन इहै लाभु संकर जाना॥

(७१) लेश, ल० – गुन मैं दोषरु दोष मैं गुन कल्पन सो लेख, यथा—(दोष में गुन)

जौ नहि होत मोह अति मोहीं।
मिलितेउँ तात कवन विधि तोहीं॥

(गुन ते दोष) मोहि दीन्ह सुख सुजस सुराजू।

(७२) मुद्रा, ल० – मुद्रा प्रस्तुत पद विषै, औरै अर्थ प्रकास यथा–

उमा राम गुन गूढ़ पंडित मुनि पावहिं विरति।
पावहिं मोह विमूढ़ जे हरिविमुख न धर्म रति॥

यह दोहा सम्पूर्ण आरण्यकांड की कथा का सूचक है। यथा—
जे गावहिं यह चरित सँभारे। ते येहि ताल चतुर रखवारे॥
यहाँ गावहिं, सँभारे और ताल ये पद ऐसे आए हैं जो सङ्गीत के प्रसङ्ग में लगते हैं।

(७३) रत्नावली, ल० – रत्नावली प्रस्तुत अरथ क्रम से औरै नाम, यथा– पुरुषसिंह बन खेलन आये। पुरुषसिंह = नृसिंह और बनखेलन = वाराह।

(७४) तदगुण, ल०–तद गुन तजि गुन आपनो संगति को गुन लेइ, यथा–

धूमौ तजै सहज करुआई। अगर प्रसंग सुगंध बसाई॥

(७५) पूर्वरूप, ल०—पूर्व रूप लै संग गुन तजि पुनि अपनो लेइ, यथा—

केस मुकुत सखि मरकत मनि मय होत।
हाथलेत पुनि मुकुता करत उदोत॥

लखि सुवेष जग बंचक जेऊ। भेष प्रताप पूजि अहि तेऊ॥
उघरहिं अन्त न होइ निबाहू। कालनेमि जिमि रावण राहू॥

(७६) अतद्गुण, यथा—सोइ अतद गुन संगते जब गुन लागत नाहिं, यथा—

खलउ करहिं भल पाइ सुसंगू। मिटइ न मलिन सुभाउ अभंगू॥

(७७) अनुगुण, यथा- अनुगुण संगति ते जबै, पूरब गुन सरसाय, यथा—

काक होहिं पिक बकउ मराला।

(७८) मीलित, यथा—मीलित सोइ सादृश्य ते, भेद न जबै लखाय, यथा—

सब सुर जिते एक दसकंधर। अब बहु भये तकहु गिरिकंदर॥

(७९) सामान्य, ल०—सामान्य जु सादृश्य ते, जानि परै न विशेष, यथा—

रामु लखनु सखि होहिं कि नाहीं।

(८०) उन्मीलित, ल०—उन्मीलित सादृश्य ते, भेद फुरे तब मानि, यथा—

सम प्रकास तम पाख दुहुँ, नाम भेद विधि कीन्ह।
ससि सोषक पोषक समुझि, जग जस अपजस दीन्ह॥ यथा—

चंपक हरवा अङ्ग मिलि, अधिक सोहाय।
जानि परै सिय, हियरे जब कुँभिलाय॥

(८१) विशेषक, ल०—यह विशेषक विशेष पुनि फुरैजु समता माहिं, यथा—

वेषु न सो सखि सीय न संगा।
आगे अनी चली चतुरंगा॥

(८२) गूढ़ोत्तर ल०—गूढ़ोत्तर कछु भावतें, ऊतर दीन्हे होत, यथा—

जनि जलपना करि सुजस नासहि नीति सुनहिं करहि छमा।
संसार महँ पूरुष त्रिविध पाटल रसाल पनससमा।
एक सुमनप्रद एक सुमन फल एक फलहि केवल लागहीं।
एक कहहिं करहिं कहहिं अपर एक करहिं कहत न वागहीं।

(८३) चित्र, ल०—चित्र प्रश्न उत्तर दोऊ एक बचन मै होय, यथा—

मृत्यु निकट आई खल तोही। लागेसि अधम सिखावन मोही।
उलटा होइ कहा हनुमाना। तथा—
तात कहाँ ते पाती आई।

(८४) सूक्ष्म, ल०—सूक्ष्म पर आसय लखें सैननिमे कछु भाय, यथा—

विनय प्रेम बस भई भवानी। खसी माल मूरति मुसुकानी॥

(८५) पिहित, ल०—पिहित छिपे पर बात को जानि दिखावै भाव, यथा—

जोरि पानि प्रभु कीन्ह प्रनामू। पिता समेत लीन्ह निज नामू॥
कहेउ बहोरि कहाँ वृषकेतू। विपिन अकेलि फिरहु केहि हेतू॥

(८६) व्याजोक्ति ल०—व्याजोक्ती कछु और विधि कहै दुराय अकार, यथा—

नाम प्रतापभानु अवनीसा। तासु सचिव मैं सुनहु मुनीसा॥

(८७) गूढ़ोक्ति, ल०—गूढ़उक्ति मिस और के कीजै पर उपदेस, यथा—

सौरज धीरज तेहि रथ चाका।
सत्य सील दृढ़ ध्वजा पताका॥
बल विवेक दम परहित घोरे।
छमा कृपा समता रजु जोरे॥
ईस भजन सारथी सुजाना।
विरति चर्म संतोष कृपाना॥
दान परसु बुधि सक्ति प्रचंडा।
वर विज्ञान कठिन कोदंडा॥
अमल अचल मन त्रोन समाना।
सम जम नियम सिलीमुख नाना॥

कवच अभेद विप्र गुरु पूजा।
एहि सम विजय उपाय न दूजा॥
सखा धर्ममय अस रथ जाके।
जीतन कहुँ न कतहुँ रिपु ताके॥

(८८) विवृतोक्ति, श्लेष छप्यौ परगट किये विवृतोक्ति है ऐन, यथा—

वेगि विलंबु न करिअ नृप, साजिअ सबुइ समाजु।
मुदित सुमंगल तबहिं जब राम होहिं जुवराजु॥

(८९) युक्ति, ल० – कहँ युक्ति कीन्हे क्रिया मर्म छिपायो जाय, यथा—

गएँ जाम जुग भूपति आवा।
घर घर उत्सव बाज बधावा॥

(९०) लोकोक्ति, ल०—लोकोक्ती कछु बचन जो, लीन्हे लोक प्रवाद, यथा—

देव काह हम तुम्हहिं गोसाईं।
ईंधनु पात किरात मिताईं॥

(९१) छेकोक्ति; ल०—लोकोक्ती कछु अर्थ सों सो छेकोक्ति प्रमान, यथा—

सत्य सराहि कहेहु वरु देना।
जानेहु लेइहि माँगि चबेना॥

(९२) वक्रोक्ति, ल०—वक्रोक्ति स्वर श्लेष सों अर्थ फेर जो होय, यथा—

धर्म सीलता तव जग जागी।
पावा दरस हमहु बड़भागी॥

(९३) स्वभावोक्ति, ल०—स्वभावोक्ति वह जानिये वर्नन जाय सुभाय, यथा...

राम सुभाय चले गुरु पाहीं।
सिय सनेह वरनत मन माहीं॥

(६४) भाविक, ल०—भाविक भूत भविष्य जो परतच्छ कहै बताया, यथा—

अजहुँ जासु उर सपनेहुँ काऊ।
बसहु लखन सिय राम बटाऊ॥
राम धाम पथ पाइहिं सोई। तथा—
खोजत रहेउँ तोहि सुतघाती।
आजु निपाति जुड़ावौं छाती॥

(६५) उदात्त, ल०—उपलच्छन दै सोधिये अधिकाई सो उदात्त, यथा—

देखि देवपति भरत प्रभाऊ।
सहज सुभायँ विवस रघुराऊ॥ तथा—
जेहि तिरहुत तेहि समय निहारी।
तेहि लघु लगति भुवन दस चारी॥

(६६) अत्युक्ति, ल०—अलंकार अत्युक्ति वह वरनत अतिसय रूप, यथा—

सर्वस दान दीन्ह सब काहूँ।
जेहि पावा राखा नहिं ताहूँ॥

(६७) निरुक्ति, ल०—सो निरुक्ति जब जोगते अर्थ कल्पना आन, यथा—

कनक कलित अहि बेलि बनाई।
लखि नहि परे सपरन सुहाई॥ तथा—
तनविचित्र कायर बचन अहि अहार मन घोर।
तुलसी हरि भये पच्छधर ताते कह सब मोर॥

(६८) प्रतिषेध, ल०—सो प्रतिषेध प्रसिद्ध जो अर्थ निषेधौ चाय, यथा—

जीतेहु जे भट संजुग माहीं।
सुनु तापस मैं तिन्ह सम नाहीं॥

(९९) विधि, ल०—अलंकार विधि सिद्ध जो अर्थ साधि फेर, यथा—

विश्व भरन पोषन कर जोई।
ताकर नाम भरत अस होई॥

(१००) हेतु, ल०—हेतु अलंकृत होय जब कारज कारन संग, यथा—

रघुकुल तिलक सुजन सुख दाता।
आएउ कुसल देव मुनि त्राता॥ तथा—
उएउ भानु बिनु श्रम तम नासा।
दुरे नखत जग तेजु प्रकासा॥

अलङ्कारों की संख्या तथा कहीं कहीं लक्षणों में भी मतभेद है। अलङ्कार ग्रन्थों में महाराज जसवन्तसिंह कृत भाषाभूषण ही आज कल अधिक प्रचलित है, और कविसमाज में उसका आदर है, अतः अलंकारों के लक्षण प्रायः उसीसे लिये गये हैं। उदाहरण में दो एक जगह बरवा रामायण की सहायता भी ली गई है, शेष उदाहरण श्रीरामचरित मानस के ही हैं। कई अलङ्कारों के उदाहरण मुझे नहीं मिले, अतः उनका उल्लेख नहीं किया।

पुरइन सघन—कमलनाल युक्त पत्तों को पुरइन कहते हैं। ये पत्ते सदा जल के ऊपर रहते हैं। सघन पुरइन होने से जल दिखाई ही नहीं पड़ता, तालाब भर में केवल पुरइन ही पुरइन पुरइन दिखाई पड़ती है, पर वह जल के ऊपर ही रहती है, हटाते ही जल मिलता है, यथा—पुरइन सघन ओट जल वेगि न पाइय मर्म, जल ही पुरइन का उपजीवन है, और जल को ही ये ढके रहती हैं, ऐसी एक भी पुरइन नहीं होती जिसके ओट में जल न हो। पुरइन छोटी बड़ी सब प्रकार की होती है।

चारु चौपाई—चौपाई शब्द ही कह रहा है कि इसमें चार पाद होते हैं। दो पादों की एक अर्धाली होती है। एवम् दो अर्धालियों की एक चौपाई हुई, परन्तु ऐसे स्थल भी कम नहीं हैं, जहाँ कि विषम

संख्यक अर्धालियों के बाद ही दोहा सोरठा या छन्द आपड़ा है, ऐसे अवसर पर जिस भाँति आधे श्लोक को भी पूरा मान लेते हैं, उसी भाँति अंतिम अर्धाली को भी पूरी चौपाई माननी पड़ेगी। इस विषमत्व को देख कर कुछ लोगों की ऐसी धारणा हो गई है कि ग्रन्थकर्ता ने अर्धालियों को ही चौपाई माना है, परंतु यह बात नहीं है।

सभी प्राचीन ग्रन्थों में ऐसा पाया जाता है कि जहाँ आधे श्लोक के बाद ही मुनिरुवाच अथवा राजोवाच आगया, वहाँ ही आधे श्लोक को पूरा मानने की परिपाटी है। इससे यह नतीजा निकालना भूल है, कि व्यास और वाल्मीकिजी ने दो ही दो चरणों के श्लोक माने हैं। अतः जहाँ ११ अर्धालियों के बाद दोहा आगया है वहाँ छः चौपाइयाँ मानना ही न्याय है। उन्हें ग्यारह चौपाइयाँ मान लेने से तो साढ़े पाँच मानना ही अच्छा है, क्योंकि अर्धाली को ही चौपाई मानने से छन्द-शास्त्र का भारी विरोध होगा।

चौपाई के प्रत्येक पद में सोलह मात्राएँ होती हैं, और अंत में जगण (।S।) या तगण (SS।) नहीं आते। सीधी लकीर एकमात्रिक (लघु) का चिह्न है और टेढ़ी लकीर द्विमात्रिक गुरु का चिह्न है।

२१२१२१११२२

जामवन्त के वचन सोहाए। में S।S।S।।।।SS= १६ मात्राएँ हुई। इसमें और किसी क्रम की अपेक्षा नहीं है, केवल इस बात का ध्यान रहे कि लय न बिगड़ने पावे! यदि 'वचन जामवन्त के सोहाए' कहें तो मात्रा में भेद नहीं पड़ता, वे ही सोलह मात्राएँ रह जाती हैं, परन्तु लय बिगड़ जाता है। श्रीरामचरितमानस में लय पर पूरा ध्यान रक्खा गया है। इसीलिये चारु चौपाई कहते हैं। कहीं कहीं पंद्रह मात्रा का चौपाई छंद भी आ गया है यथा—

नाथ भगति अति सुखदायिनी। देहु कृपा करि अनपायनी॥
अब कृपाल निज भगति पावनी। देहु सदा सिव मन भावनी॥

यहाँ चौपाई की उपमा पुरइन से दी है, सघन पुरइन की भांति श्रीरामचरितमानस में चौपाई ही चौपाई दिखाई पड़ती हैं। इसीलिये

कुछ लोग इसे चौपाई रामायण भी कहते हैं। इन चौपाइयों की ओट में रामायण भरा पड़ा है। कोई चौपाई ऐसी नहीं है, जो रामयश से असम्बद्ध हो। जिस भाँति सभी श्रुतियों में साक्षात् वा परम्परया ब्रह्म का ही निरूपण है उसी भाँति सभी चौपाइयाँ साक्षात् वा परम्परया राम जी का ही प्रतिपादन करती हैं। यथा—

जेहि महँ आदि मध्य अवसाना।
प्रभु प्रतिपाद्य राम भगवाना॥

कोई चौपाई ऐसी नहीं है, जिसमें रकार या मकार न आया हो, अर्धाली तो एकाध मिल भी जाती हैं; यथा झूठै लेना झूठै देना। झूठै भोजन झूठ चबैना। जिस भाँति पुरइन के अनेक भेद हैं, उसी भाँति चम्पक माला आदि अनेक भेद चौपाइयों के भी हैं। पुरइनों की भाँति चौपाइयाँ, लघुता और विशालता तारतम्य से भी अनेक प्रकार की होती हैं। किसी पादमें कुल आठ ही अक्षर हैं, यथा—झूठै लेना झूठै देना; और किसी में पन्द्रह अक्षर है, यथा—हिय सप्रेम सुमिरहु सब भरतहिं।

जुगुति मंजु—युक्ति उपाय को कहते हैं। दुःसाध्य कार्य्य भी युक्ति से सुसाध्य हो जाता है। सुन्दर युक्ति वही है जिससे अल्पायास में अर्थ-सिद्धि भी हो, और धर्म में बाधा भी न पड़े। ऐसी युक्तियाँ श्रीराम-चरितमानस में अनेक हैं।

बालकाण्डे—श्री पार्वती का हाथ देखकर नारदजी कहते हैं—

'सुनहु जे अब अवगुन दुइ चारी।
जोगी जटिल अकाम मन नगन अमंगल वेख।
अस स्वामी इहि कह मिलिहि परी हस्त असि रेख॥

यह सुनकर उनके माता पिता—मैना और हिमवान् घबड़ा उठे। प्रारब्ध टलनेवाला नहीं, तब किया क्या जाय? नारद जी ने कहा—

कह मुनीस हिमवंत सुनु जो बिधि लिखा लिलार।
देव दनुज नर नाग मुनि कोउ न मेटनिहार॥
तदपि एक मैं कहौं उपाई।
होइ करइ जौं दैउ सहाई॥

जे जे बर के दोष बखाने।
ते सब सिव पहिं मैं अनुमाने॥
जौ बिबाहु संकर सन होई।
दोषौ गुन सम कह सबु कोई॥

इसे युक्ति कहते हैं। विधि का लिखा भी हो, और अपना काम बन जाय।

अयोध्याकाण्डे—रामजी को वन से लौटाने की युक्ति भरतजी सोचते हैं—

केहि विधि होइ राम अभिषेकू।
मोहि अवकलत उपाउ न एकू॥
एकउ जुगुति न मन ठहरानी।
सोचत भरतहिं रैनि बिहानी॥

रामजी राज्य ग्रहण करते हैं, तो पिता का वचन जाता है, नहीं ग्रहण करते तो सारी अयोध्या को प्राणसंकट है। अन्त में भरत जी ने उपाय कहा—

तिलक समाजु साजि सब आना।
करिअ सुफल प्रभु जौं मन माना॥
सानुज पठइय मोहि वन कीजिअ सबहिं सनाथ।

यह युक्ति है। महाराज दशरथ ने भरत को राज्य दिया रामजी को वन दिया। भरत जी विनय करते हैं कि अपने २ भाग को हम दोनों भाई आपस में अदल बदल कर लें, आप राज्य स्वीकार करें और मैं वन स्वीकार करता हूँ। भरतजी के विनय का यही आशय है। इससे पिता का वाक्य भी रह जायगा, और अभीष्ट सिद्धि भी होगी। इसे युक्ति कहते हैं।

आरण्यकाण्डे—उधर रावण सीताहरणका निश्चय करके मारीच के पास चला, और

'इहाँ राम जस जुगुति बनाई।
सुनहु उमा सो कथा सुहाई॥'

राम जी ने सीता जी को तो अग्नि के सुपुर्द कर दिया, औ नकली सीता को पास बिठा लिया। जिस हीरा की चोरी करने चे चला, वह हीरा ही बदल गया, अब नकली (imitation) वहाँ रक्ख हुआ है। चोर का अपराध भी प्रमाणित हो जाय, और मूल ध जोखिम में भी न पड़े। यह युक्ति है।

किष्किन्धाकाण्डे—सम्पाती ने कहा—

'जो नाघइ सत जोजन सागर।
करै सो रामकाज मतिआगर॥

किसीको पार जाने का उत्साह नहीं, और हनुमानजी चुपके बैठे । कुछ बोलते नहीं। रहस्यज्ञ जाम्बवान जी ने युक्ति निकाली। हनुमा जी की स्तुति आरम्भ कर दी, जानते थे कि बड़ाई करने से इन्हें अप बल का स्मरण हो जायगा, और ऐसा ही हुआ।

सुन्दरकाण्डे—

जुगुति बिभीषनु सकल सुनाई।
चलेउ पवनसुत बिदा कराई॥
करि सोइ रूप गयेउ पुनि तहवाँ।
बन असोक सीता रह जहवाँ॥

देखि मनहि महुँ कीन्ह प्रनामा। यह महात्मा लोगों की उक्ति । सद्यः फलवती हुई।

लंकाकाण्डे—

तुरत बैद तब कीन्ह उपाई। उठि बैठे लछिमन हरषाई॥
यह सुखेणजी की युक्ति है।

उत्तरकाण्डे,—

ताते उमा न मैं समुझावा।
रघुपति कृपा मरम मैं पावा॥
होइहि कीन्ह कबहुँ अभिमाना।
सो खोवै चह कृपानिधाना॥

शिवजी ने भुसुण्डिजी के यहाँ गरुड़जी को भेज दिया। वहाँ जाते ही उनका मोह जाता रहा। इत्यादि बहुतसी सुन्दर युक्तियाँ हैं।

मनि सीप सुहाई—मोतीवाली सीप है। इस सीप के मोती भगवान् के गुण गण हैं, यथा—

जस तुम्हार मानस बिमल हँसिनि जीहा जासु।
मुकता हल गुनगन चुनइ राम बसहु हिय तासु॥

सुन्दर युक्तियों की उपमा इस मणि सीप से दिया है।

जोग जुगुति तप मंत्र प्रभाऊ।
फलै तबहिं जब करिय दुराऊ॥

अतः सुन्दर युक्तियाँ सदा छिपाई जाती हैं, यथा—

लछिमनहू यह मरम न जाना।
जो कछु चरित रचा भगवाना॥

पुरइन जल के ऊपर रहती है पर मणि सीप सदा तह में रहती है। युक्तियों को मञ्जु कहकर सुन्दर कहा, इसी भाँति उपमान मणि सीप को भी सोहाई कहकर सुन्दर कहा।

दूसरी बात यह है कि—

नीति प्रीति परमारथ स्वारथ।
कोउ न राम सम जान जथारथ॥

अतः इन सब का निर्वाह करने में बड़ी युक्ति से काम लेना पड़ता है। उन युक्तियों के गर्भ में भगवान् के गुण गण निहित रहते हैं पंडित मुनि उन युक्तियों को समझते हैं, अतः उन्हें उनमें भगवान् के गुण गणों का दर्शन होता है, और उक्त दर्शन का फल यह है कि उनका वैराग्य दृढ़ होता है, और मूढ जन और भी मोह को प्राप्त होते हैं, उन्हें सीप की पहिचान नहीं, वे उसे चाँदी मान बैठते हैं, और अनर्थ को प्राप्त होते हैं। यथा—

उमा राम गुन गूढ पंडित मुनि पावहिं बिरति।
पावहिं मोह बिमूढ जे हरि बिमुख न धर्म रति॥

तथा —

कामिन्ह कै दीनता दिखाई।
धीरन्ह के मन बिरति दृढाई॥

छंद, सोरठा, सुन्दर दोहा।
सोइ बहुरंग कमल कुल सोहा॥
अरथ अनूप सुभाव सुभासा।
सोइ पराग मकरंद सुबासा ॥ ३ ॥

अर्थ—छंद, सोरठा और सुन्दर दोहे ही रंग बिरँगे कमलों के कुल शोभित है, अनुपम अर्थ, सुन्दर भाव और अच्छी भाषा ही फूलों की धूलि पुष्परस और सुगन्ध है।

छंद—मात्राओं और वर्णों की रचना, यति (विराम) तथा गति का नियम, जिस कविता में पाया जाय उसे छन्द कहते हैं। छन्द शास्त्र का बहुत बड़ा विस्तार है। ग्रन्थ कर्त्ता ने चौपाई, दोहा और सोरठा में तो ग्रन्थ ही लिखा है, अन्य छन्दों का विरल प्रयोग है, अतः अन्य छन्दों को ही छन्द नाम से अभिहित किया है। ऐसे १५ प्रकार के छन्दों से यत्र-तत्र काम लिया गया है :—

(१) तोमर—यह मात्रिक छन्द है, इसमें बारह मात्राएँ होतीं हैं, और अन्त में लघु अक्षर होते हैं, यथा—

तब चले बान कराल (।।।SS।।S।)
फुँकरत जनु बहु ब्याल (S।।।।।।।S।)=१२ मात्रा

(२) हरिगीतिका—इसमें २८ मात्रा का एक पाद होता है सोलह पर यति है, अन्त में लघु और गुरु होता है। किसी चौकल में जगण (।S) न पड़ना चाहिये! इसके रचना का क्रम यों हैं, २, ३, ४, ३, ४, ३, ४, यथा—

येदारिका परिचारिका करिपालवी करुना मई।

(३) चवपैया—इसमें ३० मात्राएँ होती हैं। १०, ८ और १२ पर विश्राम होता है, अन्त में एक सगण और एक गुरू (।।SS) होता है यथा—

भए प्रकट कृपाला दीन दयाला कौसल्या हितकारी।

(४) त्रिभङ्गी—इसमें ३२ मात्राओं का एक पाद होता है। १०—८, ८, ६ मात्राओं पर विराम होता है। अन्त में एक गुरू आता है यथा—

परसत पद पावन, सोक नसावन, प्रगट भई तप पुंजसही

(५) अनुष्टुप्—इसमें ८ अक्षर का एक पाद होता है, चारों पादों में पाँचवा वर्ण लघु और छठा गुरु होता है, दूसरे और चौथे पाद में सातवाँ अक्षर लघु होता है, यथा, वर्णानामर्थसं (। S) घानां रसानां छन्दसाम (। S ।) पि। मङ्गलानां च क (। S) र्तारौ वन्दे वाणीविनाय (। S ।) कौ।

(६) नगस्वरूपिणी—इसमें भी ८ अक्षरों का एक पाद होता है एक जगण, एक रगण, एक लघु और एक गुरु (। S । S । S । S) होता है, यथा—

नमामि भक्तवत्सलं। कृपालु सील कोमलं॥

(७) रथोद्धता—इसमें ग्यारह अक्षरों का एक पाद होता है। एक रगण, एक तगण फिर एक रगण और अंत में एक लघु गुरु (S । S, । । । , S । S । S) होता है, यथा—

कौशलेन्द्र पदकञ्ज मञ्जुलौ, कोमलावज महेश वन्दितौ।

(८) इन्द्रवज्रा—इसमें ग्यारह अक्षरों का एक पाद होता है। आरम्भ में दो तगण एक जगण और अन्त में दो गुरु (S S ।, S S । , । S । , S S) यथा—

नीलाम्बुजश्यामल कोमलाङ्गम्।
सीता समारोपित वामभागम्॥

(९) तोटक—इसमें बारह अक्षरों का एक पाद होता है। चार सगण (। । S) आते हैं, यथा—

जय राम सदा सुख धाम हरे।
रघुनायक सायक चाप धरे॥

(१०) भुजंग प्रयात—इसमें भी बारह अक्षरों का एक पाद होता है। चार यगण (। S S) आते हैं-यथा,

नमामीशमीशाननिर्वाणरूपम् ॥
विभुं व्यापकं ब्रह्म वेद स्वरूपम् ॥

(११) वंशस्थ—इसमें भी बारह अक्षरों का एक पाद होता है। पहिले जगण,तब नगण, फिर जगण और अन्त में रगण होता है (। S।, SS।, ।S।, S।S) यथा

प्रसन्नतां या नगताभिषेकतस्तथा न मम्लेवनवासदुःखतः

(१२) वसन्ततिलका—इसमें १४ अक्षरों का एक पाद होता है। इसमें एक तगण एक भगण दो जगण और अन्त में दो गुरु होते हैं (SS।, S।।, ।S।, SS) यथा

नानापुराणनिगमागमसम्मतं
यद्रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोपि ।

(१३) मालिनी—इसमें पंद्रह अक्षरों का एक पाद होता है। दो नगण, एक मगण, और दो भगण (।।।, ।।।, SSS, ।SS, ।SS) यथा

अतुलित बलधामं स्वर्ण शैलाभ देहम्,
दनुजवन कृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यम् ।

(१४) शार्दूल विक्रीडित—इसमें १९ अक्षरों का एक पाद होता है। बारह अक्षरों पर एक यति (विराम) होती हैं। इसमें एक मगण, एक सगण एक जगण, एक सगण, दो तगण और अन्त में एक गुरु होता है (SSS, ।।S, ।S।, ।।S, SS।, SS।, S) यथा—

मूलं धर्मतरोर्विवेक जलधेः पूर्णेन्दुमानन्ददम्

(१५) स्रग्धरा—इसमें २१ अक्षरों का एक पाद होता है, सात सात अक्षरों पर यति आती है। इसमें एक मगण, एक रगण, एक भगण, एक तगण, और तीन यगण होते हैं (SSS, S।S, S।।, ।।।, ।SS, ।SS, ।SS) यथा—

रामं कामारिसेव्यं भवभयहरणं कालमत्तेभसिंहम् ।
योगीन्द्रं ज्ञानगम्यं गुणनिधिमजितं निर्गुणं निर्विकारम् ॥

सोरठा—इसके प्रत्येक दल में २४ मात्राएँ होती हैं। पहिले और तीसरे चरणों में ११ मात्रायें और दूसरे तथा चौथे चरणों में १३ मात्रायें होती हैं। इसके सम चरणों में जगण (। ऽ ।) का निषेध है, और उनके आदि में त्रिकल के पश्चात् दो गुरु नहीं आते यथा—

जेहि सुमिरत सिधि होइ, गन नायक करिवर बदन।
करहु अनुग्रह सोइ, बुद्धि रासि सुभ गुन सदन॥

इसके उलटने से दोहा हो जाता है, यथा—

गननायक करिवर बदन, जेहि सुमिरत सिधि होइ।
बुद्धि रासि सुभ गुन सदन, करहु अनुग्रह सोइ॥

दोहा सुन्दर—इसके भी प्रत्येक दल में २४ मात्रायें होती हैं। यह सोरठा का उलटा है। प्रथम और तृतीय चरणों में १३ मात्रायें होती हैं, उनके आदि में जगण (। ऽ ।) न होना चाहिये। नहीं तो दोहा की चण्डालिनी संज्ञा हो जाती है। यह अति निन्द्य है, अतः 'सुन्दर दोहा' कहा। अन्त में सगण (। । ऽ) रगण (ऽ । ऽ) वा नगण (। । ।) रहता है। दूसरे और चौथे चरणों में ११ मात्रायें इस प्रकार से रहती हैं कि उनके अन्त में जगण (। ऽ ।) या तगण (ऽ ऽ ।) रहता है। सम के पीछे सम और विषम के पीछे विषम कल का प्रयोग होता है। यथा—

राम नाम मनि दीप धरु जीह देहरी द्वार।
तुलसी भीतर बाहिरौ जो चाहसि उँजियार॥

यदि पूरे शब्द में जगण पड़े तभी वह निन्द्य समझा जाता है। यदि पहला और दूसरा अक्षर मिलकर एक शब्द बन जाता हो, और तीसरा अक्षर किसी दूसरे शब्द का अङ्ग हो तो दोष नहीं पड़ता, यथा—

भलो भलाइहि पै लहै, लहै निचाइहि नीच॥

यहाँ दो अक्षर मिलकर 'भलो' शब्द पृथक् है, और 'भलाई' का प्रथमाक्षर भी मिलने से जगण हुआ, अतः इसमें दोष नहीं है।

हमारे धर्म ग्रन्थों में अठारह संख्या से अधिक काम लिया है। पुराणों की संख्या अठारह है भारत में अठारह पर्व हैं, गीता में अठारह अध्याय है, अठारह अक्षौहिणी सेना है, अठारह दिन युद्ध होता है, श्री गोस्वामी जी ने भी श्री रामचरितमानस में अठारह प्रकार के छन्दों से ही काम लिया है। इस अठारह संख्या के रहस्य पर विद्वानों को दृष्टिपात करना चाहियें—

सोई वहुरंग – इन छन्द सोरठा और दोहों के अनेक रङ्ग हैं। महात्माओं ने सत्व गुण का रङ्ग श्वेत, रजोगुण का रक्त, तमोगुण का नील और गुणातीत का पीत माना है। सो छन्द सोरठा दोहा भी विषय भेद से सात्विक राजस, तामस, और गुणातीत माने गये हैं, अतः उनका क्रम से श्वेत, रक्त नील और पीतरंग हुआ।

सात्विक, यथा —

लागे पखारन पाय पंकज प्रेम तनु पुलकावली।

राजसिक, यथा—

राम राज नभगेस सुनु सचराचर जगमाहि।
काल कर्म सुभावगुन कृत दुख काहुहि नाहि॥

तामसिक, यथा—

तब चले बान कराल। फुंकरत जनु बहु ब्याल।

गुणातीत, यथा—

जय राम रूप अनूप निर्गुन सगुन गुन प्रेरक सही।

इसलिये छन्द सोरठा सुन्दर दोहा को बहु रङ्ग कहा।

कमल कुल—छन्द सोरठा दोहा को कमल कुल कहा। कमल के भी चार रङ्ग हैं। श्वेत, रक्त, नील और पीत रङ्ग के कमल होते हैं। महाराज जनक जी के मण्डप में श्वेत, रक्त, नील और पीत रङ्गों के कमल इसी लिये बनाये गये। यथा —

मानिक मरकत कुलिस पिरोजा।
चीरि कोरि पचि रचे सरोजा॥

माणिक रक्त वर्ण का, मरकत नील वर्ण का, कुलिस (हीरा) श्वेत वर्ण का, और पिरोजा पीत वर्ण का होता है।

कुल का लेखा वर्ण और मात्रा से है, इसका वर्णन हो चुका है। कोई कमल कुल अष्ट दल का होता है, कोई द्वादश दल का, यहाँ तक कि सहस्र दल का भी कमल होता है, पर यहाँ अष्ट दल से लेकर बत्तीस दल का उल्लेख है। येही कमल के भिन्न-भिन्न कुल हैं।

पहिले कह आये हैं कि चौपाइयाँ पुरइन हैं, और पुरइन से ही कमल निकलते हैं, इसी भाँति चौपाई से छन्द सोरठा दोहा निकलते हैं। जैसे चौपाई है,

सो वर मिलिहि जाहि मन राचा।

अब इससे कमल निकला—

'मन जाहि राँचो मिलिहि सो वर सहज सुन्दर साँवरो।

जिस भांति यह नियम नहीं है कि कै पुरइन के बाद कमल निकलता और कै कमल निकलता है इसी भांति यह भी नियम नहीं है कि कितनी चौपाइयों के बाद छन्द, सोरठा और दोहा आते हैं और कै इकट्ठे आते हैं। कहीं एक पुरइन के बाद भी कमल देखा गया है, जैसे आरण्य कांड में जटायुजी की स्तुति और कहीं १६ चौपाइयों के बाद भी कमल फूला है, जैसे उत्तर के अन्त में मानस रोग प्रकरण।

श्रीरामचरितमानस का ठीक अर्थ लगाने के लिये, प्रत्येक पुरइन और कमल का हाल जानना होगा। इस काम में बड़ा आनन्द मिलता है। पुरइन और कमलों का पता बिना लगाये पूरा अर्थ लगेगा नहीं और कहीं कहीं तो एकदम अर्थ नहीं लगता। यथा—

'तीनि अवस्था तीन गुन तेहि कपास ते काढ़ि।
तूल तुरीय सँवारि पुनि बाती करै सुगाढ़ि॥'

यह कमल है। अब जब तक इस कमल के पुरइन का पता नहीं लगता, तब तक 'तेहि कपास से काढ़ि' इस पद का अर्थ लग नहीं सकता। शंका बनी रह जाती है कि 'केहि कपास ते काढ़ि?' यहाँ

कपास का उपमेय कहा ही नहीं और अपने मन से कल्पना करने से निश्चय भूल होगी।

अतः एकमात्र उपाय यह है कि इस कमल के पुरइन का पता लगाया जावे। कहीं कहीं पुरइन के खोज में असाधारण परिश्रम करना पड़ता है। कमल खिला तो उत्तरकांड के अन्त में और पुरइन का पता जाकर लगा बालकांड के आरम्भ में—

'साधु चरित सुभ चरित कपासू।
निरस बिसद गुनमय फल जासू॥

यहाँ कपास शब्द और प्रकरणगत अर्थ से पुरइन पहिचानी गई। यह पुरइन यहाँ से भीतर ही भीतर छ कांड पार करती चली गई और उत्तर में जाकर फूली। पुरइन का पता लगते ही अर्थ खुल गया। साधुचरित ही कपास का गुनमय फल है। कपास के फल में तीन विभाग होते हैं और वे गुणमय होते हैं. अर्थात् रूई के सूक्ष्म रेशों से भरे होते हैं। उन्हीं तीनों गुणमय विभागों से तुरीयरूपी रूई निकलेगी, जिसे लेकर बत्ती बनाना है। इसी भांति अनेक स्थल हैं, जहाँ बिना पुरइन का पता लगाये अर्थ हो ही नहीं सकता। पंक्तियों को सुलाते हुये आगे बढ़ते चले जाना दूसरी बात है।

बात को स्पष्ट करने के लिये एक और उदाहरण देता हूँ।

'सुनि भूपाल भरत व्यवहारू।
सोन सुगंध सुधा ससि सारू॥'

यह पुरइन है। इसका अर्थ लगने पर भी बात साफ नहीं होती। यह तो मालूम हो गया कि भरत के व्यवहार को ही सोना कह रहे हैं और उसीमें सुगन्ध और स्वाद भी बतला रहे हैं, पर यह न मालूम हुआ कि व्यवहार में क्या सुवर्ण है, क्या सुगन्ध है और किसे स्वाद कह रहे हैं ?

अपने मन से कल्पना करने में सन्देह बना रहेगा और भूल भी होना निश्चित ही है। अतः यहाँ यह देखना होगा कि इस पुरइन का

सम्बन्ध किन किन पुरइन और कमलों से है। पहिले सोना शब्द को पकड़िये और खोज चलिये तो इसका सम्बन्ध—

'कनकहिंवान चढ़इ जिमि दाहें।
तिमि प्रियतम पद नेम निबाहें॥'

से स्पष्ट मालूम होता है, तथा—

कसें कनक मनि पारिख पाएँ।
पुरुष परिखिअहिं समय सुभाएँ॥'

इस चौपाई से भी सम्बंध है। अब सोना का अर्थखुल गया कि भरतजी का नेम निर्वाह ही सोना है।

अब सुगंधि शब्द को पकड़िये और प्रसङ्ग पर ध्यान रखते हुए खोज चलिये तब पता चलेगा कि इसका सम्बन्ध बालकाण्ड के इस कमल से है कि—

'भायप भलि चहुँ बंधु की जल माधुरी सुवास।

अब अर्थ खुल गया कि भरतजो का भायप (भाईपन) ही सोने में सुगन्ध है।

एवम् 'सुधाकर सार' शब्द को पकड़िये और खोजिये तो पता चलता है कि यह पुरइन अयोध्या के मध्य से निकल कर बालकाण्ड के पूर्वार्ध में पहुँची और वहाँ से चक्कर काटती हुई फिर अयोध्या के अंत में जाकर निम्निलिखित चौपाइयों से सम्बद्ध हुई—यथा

परम पुनीत भरत आचरनू।
मधुर मंजु मुद मंगल करनू॥
हरन कठिन कलि कलुष कलेसू।
महा मोह निसि दलन दिनेसू॥
पाप पुञ्ज कुंजर मृगराजू।
समन सकल सन्ताप समाजू॥
जन रंजन भंजन महि भारू।
राम सनेह सुधाकर सारू॥

अब अर्थ खुल गया कि भरतजी का आचरण ही 'सुधाकर सार' अर्थात् स्वाद है।

इस भाँति परिश्रम तो पड़ेगा, पर इस ग्रन्थ के लगने का उपाय यही है, कि इसके कमल और पुरइनों पर पूरा ध्यान दिया जाय। तालाब में जो पुरइन होती हैं उनके फैलने का कोई नियम नहीं है कोई किधर जाती हैं कोई किधर जाती है, इसी भाँति छंद, सोरठा, दोहा और चौपाइयों का भी कोई नियम नहीं है। ग्रंथ के वक्ताओं का काम है कि बड़ी सावधानी से सबका पता रक्खें और इस रीति से व्याख्या करें कि कोई पुरइन या कमल टूटने न पावे।

ऐसी पुरइने बहुत हैं जिनसे फूल नहीं निकले हैं, पर ऐसे कमल नहीं हैं जिन्हें पुरइन न हो। अब इनके कुछ नियम जो हाथ लगे हैं, हैं, उदाहरण के साथ यहाँ पर दिये देता हूँ यथा –

(१) कहीं फूले हुए कमल हैं यथा—

सात स्वर्ग अपवर्ग सुख धरिय तुला इक अङ्ग।
तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसङ्ग॥
यह 'तात मोर अति पुन्य बहूता।
देखेउँ नयन राम कर दूता॥'

इस पुरइन का कमल है। राम के दूत के दर्शन मात्र के सुख की विशद व्याख्या है।

(२) कहीं कली विकसित हो रही है यथा—

अति उतंग जलनिधि चहुँपासा।
कनक कोट कर परम प्रकासा॥

यहाँ 'कनक कोट' शब्द कली है, आगे चलकर इसीका विकाश हो रहा है—

'कनक कोट विचित्र मनि कृत सुंदरायतना घना।
चौहट्ट हट्ट सुबट्ट बीथी चारु पुर बहु बिधि बना॥

(३) कहीं कहीं एक पुरइन में एकाधिक कमल फूले हैं, यथा— अयोध्याकाण्ड में पुरइन है –

करि मज्जन पूजहिं नर नारी।
गनपति गौरि पुरारि तमारी॥
रमारमन पद बन्दि बहोरी।
बिनवहिं अंजलि अंचल जोरी॥

इससे चार कमल बालकाण्ड के आरम्भ में जाकर निकले हैं—

जेहि सुमिरत सिधि होइ गननायक करिवर बदन।
करौ अनुग्रह सोइ बुद्धि रासि सुभ गुन सदन॥१॥
मूक होइ बाचाल पंगु चढ़इ गिरिवर गहन।
जासु कृपाँ सो दयाल द्रवौ सकल कलि मल दहन॥
(सूर्य्य स्तुति)॥२॥

नील सरोरुह स्याम तरुन अरुन बारिज नयन।
करौ सो मम उर धाम सदा छीर सागर सयन॥३॥
कुंद इन्दु सम देह उमा रमन करुना अयन।
जाहि दीन पर नेह करहु कृपा मर्दन मयन॥४॥
(शिव पार्वती की स्तुति)

उन चारो सोरठाओं में बन्दौं पद नहीं आया, क्योंकि पुरइन में आ चुका है।

(४) कहीं अनेक स्थानों की पुरइनें इकट्ठी होकर फूली हुई हैं, जिनसे फूलों का गुच्छा बन गया है। तीन दोहों के बाद तीन सोरठा और फिर एक दोहा आया है, इस भाँति कमलों का गुच्छा बन गया है, और उन सबों की पुरइनें सब एक जगह की नहीं है,

यथा—

दो०—सरल कवित कीरति बिमल सोइ आदरहिं सुजान।
सहज बयर बिसराइ रिपु जो सुनि करहि बखान॥१॥
सो न होइ बिनु बिमल मति मोहिं मति बल अति थोर।
करहु कृपा हरि जस कहउं पुनि पुनि करउँ निहोर॥२॥

इन दोनों कमलों में पुरइन है—

'कीरति भनिति भूति भलि सोई ।
सुरसरि सम सब कहँ हित होई ॥'

दो०—कवि कोबिद रघुबर चरित मानस मंजु मराल ।
बाल बिनय सुनि सुरुचि लखि मोपर होहु कृपाल ॥

इस कमल की पुरइन—

कबि कोविद अस हृदय बिचारी ।
गावहि हरि जस कलिमल हारी ॥'

थोड़े दूर से आई है (३)

दो०—बन्दौं मुनि पद कंज रामायन जेहि निरमयेउ ।
सखर सुकोमल मंजु दोष रहित दूषन सहित ॥

इसकी पुरइन है—

ब्यास आदि कवि पुङ्गव नाना ।
जिन्ह सादर हरि सुजस बखाना ॥ (४)

दो०—बन्दौं चारिउ वेद भव बारिधि बोहित सरिस ।
जिन्हहि न सपनेहु खेद बरनत रघुबर बिसद जस ॥ (५)
बन्दौं बिधि पदरेनु भवसागर जेहि कीन्ह जहँ ।
संत सुधा ससि धेनु प्रगटे खल विष बारुनी ॥ (६)

इन दोनों दोहों की पुरइन है—

'भलेउ पोच सब बिधि उपजाये ।
गनि गुन दोष वेद बिलगाये ॥

सो०—बिबुध बिप्र बुध ग्रह चरन बंदि कहौं कर जोरि ।
होइ प्रसन्न पुरवहु सकल मंजु मनोरथ मोरि ॥ (७)

इस कमल की पुरइन है—

'सूझ न एकौ अंग उपाऊ ।
मनमति रंक मनोरथ राऊ ॥'

इस भांति सात कमल हुए ।

(५) कहीं जहाँ की तहाँ पुरइने फूली हुई हैं, इसके उदाहरण के लिये, नियम एक का उदाहरण देखिये ।

(६) कहीं बहुत दूर जाकर पुरइन फूल देती है, यथा—

भरि लोचन छवि सिंधु निहारी।
कुसमय जानि न कीन्ह चिन्हारी॥'

यह पुरइन बालकांड में है, पर जाकर लङ्का कांड के अन्त में फूली है, यथा—

सुमन बरषि सब सुर चले चढ़ि चढ़ि रुचिर बिमान।
देखि सुअवसर प्रभु पहिं आये सम्भु सुजान॥

(७) कहीं एक पुरइन दूसरे से सम्बद्ध है, यथा—

'बार बार रघुबीर संभारी।
तरकेउ पवन तनय बल भारी॥'

यह पुरइन सुन्दर कांड की है; पर इसका सम्बन्ध किष्किन्धा कांड की पुरइन—

'हनुमत जन्म सफल करि माना।
चलेउ हृदय धरि कृपा निधाना॥

से है। जब कोई किसी वस्तु को अपने पास रखकर चलता है तो कूदने डाकने के समय उसे सँभाल लेता है, कि कहीं गिर न जावे। हनुमानजी कृपानिधान को हृदय में धारण करके चले थे, इसी लिये समुद्रोल्लंघन के समय उन्हें सँभाल रहे हैं। यथा—

मन माधव को नेक निहारहि।
सुनु सठ सदा रंक के धन ज्यों छनछन प्रभुहि सँभारहि।

सोहा—कमलों के फूलने से ही सरोवर की शोभा होती है, यथा—

फूले कमल सोह सर कैसा।
निर्गुन ब्रह्म सगुन भये जैसा॥

इसी भांति छन्द सोरठा सुन्दर दोहा से श्रीरामचरितमानस की शोभा है। अतः जहाँ शोभातिशय का प्रकरण आ गया है, वहाँ छंदों की भी भरमार है। श्रीशङ्कर भगवान् के व्याह में चार-चार चौपाई के बाद एक छंद और एक सोरठा या एक दोहा है इस भांति ग्यारह (रुद्र संख्यक) छंद इकट्ठे आये हैं, श्रीरामजी के व्याह में इसी भांति

बारह (आदित्य संख्यक) छंद इकट्ठे आये हैं, श्रीराम रावण युद्ध में इसी भांति सत्ताईस (नक्षत्र संख्यक) छंद इकट्ठे आये हैं। ये संख्यायें भी सप्रयोजन हैं।

जिन देशों के दृश्य से साम्य की शोभा है, वहाँ के चरित्र में पुरइन और कमलों के क्रम और संख्या में भी समता है, यथा बालकांड में प्रायेण चार चौपाइयों के बाद दोहा आता गया है, अयोध्या कांड में तो चार चौपाइयों के बाद एक दोहा और २४ दोहों के बाद पचीसवां एक छंद और सोरठा बराबर आता है, फिर भी सरोवर के पुरइन और कमल से उपमित होने के कारण किसी क्रम को पूरी तरह से निबहने नहीं दिया है।

जिन देशों में दृश्य वैषम्य की शोभा है, वहाँ कमल भी उसी रीति से फूले हैं। कहीं एक पुरइन के बाद भी कमल है और कहीं १७ पुरइन तक कमल का पता नहीं है।

अर्थ—जो सुनिये सो शब्द है, अर्थ जो समुझै चित्त। सो अर्थ के समझने का तीन प्रकार है—(१) अभिधा (२) लक्षणा, और (३) व्यञ्जना। येही शब्द की शक्तियाँ कहलाती हैं।

अभिधाः—ऐसे शब्दन सों जहाँ प्रकट होत सङ्केत।
तेहि वाच्यार्थ बखान ही सजन सुमति संचेत ॥
अनेकार्थ हू शब्द में एक अर्थ की भक्ति।
तेहि वाच्यार्थ को कहै सज्जन अभिधा शक्ति ॥

जाति, यथा—

देव दनुज मुनि नाग नर प्रेत पितर गंधर्व।

यदृच्छा, यथा—

द्विविद मयंद, नील नलु अंगद गद विकटासि।

गुण, यथा—

सुमुख सुलोचन सरल सुभाऊ।

क्रिया, यथा—

धाइ उठाइ लाइ उर लीन्हे।
दीन्हि असीस कृतारथ कीन्हे॥

अनेकार्थ शब्दों में एकार्थ निर्णय के बारह प्रकार कवियों ने बतलाया है—(क) संयोग (ख) वियोग (ग) साहचर्य (घ) विरोध (ङ) अर्थबल (च) प्रकरण (छ) सामर्थ्य (ज) औचित्य (झ) देश-बल (ञ) काल-बल (ट) अन्य सन्निधि और (ठ) लिङ्ग।

क—संयोग, यथा—

फूले कमल सोह सर कैसे।

यहाँ कमल के योग से 'सर' का अर्थ तालाब किया गया। हिंदी में शर का तद्भव रूप सर है, और सरस् का भी सर ही है।

ख—वियोग, यथा—

मुनि मख राखन गयउ कुमारा।
बिनु फर सर रघुपति मोहि मारा॥
बिनु फर सायक मारेउ चाप श्रवन लगि तान।

यहाँ फल रहित कहने से 'सर' का अर्थ बाण हुआ।

ग—साहचर्य्य, यथा—

कहु कहँ तात कहाँ सब माता।

यहाँ माता के साहचर्य्य से 'तात' का अर्थ पिता हुआ।

घ—विरोध, यथा—

सुनहु तात माया कृत गुन अरु दोष अनेक।
गुन यह उभय न देखिअहि देखिअ सो अविवेक,

यहाँ विवेक और अविवेक के विरोध से दूसरे दल के 'गुन' का विवेक अर्थ हुआ।

ङ—अर्थ बल, यथा—

जोग अगिनि करि प्रकट तब कर्म सुभासुभ लाइ।
बुद्धि 'सिरावै' ज्ञानघृत ममतामल जरि जाइ॥

यहाँ नवनीत का घी बनाने में 'सिरावै' का गर्म करना अर्थ हुआ।

च—प्रकरण, यथा—

तृषित बारि बिनु जो तनु त्यागा।
मुए करै का सुधा तड़ागा॥

यहाँ 'सुधा' का अर्थ प्रकरण बल से 'जल' किया जावेगा। पय
की लालममृतं भुवनं वनम्।

छ—सामर्थ्य, यथा—

सदा सोहागिनि होहु तुम्ह जब लगि महि अहि सीस,

सामर्थ्य की दृष्टि से 'अहि' का अर्थ भूमि-नाग न करके शे
किया गया।

ज—औचित्य, यथा—

जे न भजहिं हरि नर तनु पाई।

यहाँ हरि का अर्थ विष्णु करना उचित है।

झ—देशबल, यथा—

ससि संपन्न सोह महि कैसी।

यहाँ पृथ्वी देश है, अतः ससि का अर्थ 'शस्य' हुआ हिंदी
शशि तथा सस्य का तद्भव रूप ससि होता है।

ञ—कालबल, यथा—

सुकल पच्छ अभिजित हरि प्रीता।
मध्य दिवस अति सीत न घामा॥

यहाँ मध्य दिवस के बल पर 'अभिजित' मुहूर्त्त अर्थ हुआ।

ट—अन्य सन्निधि, यथा—

ज्ञान गिरा गोऽतीतमनूपं।

यहाँ गिरा के सान्निध्य से 'गो' का अर्थ इंद्रिय किया गया।

ठ—लिङ्ग, यथा—

सुरसर सुभग बनज बन चारी।

यहाँ पुल्लिङ्ग प्रयोग से मानसरोवर अर्थ हुआ, स्त्रीलिङ्ग प्र
गङ्गा अर्थ होता।

२—लक्षणा—

मुख्य अर्थ के बाध सों शब्द लाक्षणिक होत।
रूढी प्रयोजनोवती द्वै लक्षणा उदोत॥
रूढी—मुख्य अर्थ को बाध पै जग में बचन प्रसिद्ध।
रूढि लक्षणा कहत हैं ताको सुमति समृद्ध॥

यथा—

सुफल मनोरथ होहिं तुम्हारे।

सो मनोरथ कोई वृक्ष नहीं है, जो फलेगा, लक्षणा वृत्ति से मनो-रथ का भी फलना माना गया। ऐसा ही बोलने की चाल है। अतः रूढी लक्षणा हुई।

प्रयोजनवती—प्रयोजनवती लक्षणा द्वैविध तासु प्रमान।
एक शुद्ध गौणी द्वितिय भाखत सुमति सुजान॥
उपादान इक शुद्ध में दूजी लक्षण ठान।
तीजी सारोपा कहैं चौथी साध्यवसान॥

(क) शुद्धा—उपादान—

उपादान सो लक्षणा परगुन लीन्हे होय।

यथा—

तब चले बान कराल

बाण स्वयं नहीं चलता, किसी प्राणी के चलाने से चलता है, सो मुख्यार्थ के बाध से उपादान लक्षणा हुई।

लक्षणा लक्षणा—

निज लक्षण औरहिं दिये लक्ष लक्षणा होय,

यथा—

बीच बास करि जमुनहिं आए।

सो यमुना में आना असम्भव है, इस लिये तट अर्थ हुआ।

सारोपा—

और थापिये और को क्यौहूँ समता पाय।
आरोपित सो लक्षणा कहैं सकल कविराय॥

यथा—

मुनि धन जन सरबस शिव प्राना ।
बाल केलि रस तेहि सुख माना ॥

सो (रामजी) धन नहीं हो सकते, अति प्रिय होने से 'धन' कहा—

साध्यवसाना—

जाकी समता कहन को, वहै मुख्य करि देइ ।
साध्यवसान सो लच्छणा विषय नाम नहिं लेइ ॥

यथा—

रिपुकर पच्छ मूढ़ तोहिं भावा ।

यहाँ 'मूढ़' शब्द परम भागवत् (विभीषण) के लिये आया है, केवल आरोप्यमाण रहने से साध्यवसाना, और सादृश्य सम्बन्ध न रहने से शुद्धा है ।

अथवा—

सिर धुनि लीन्हिउसास असि मारेसि मोंहिं कुठावँ ।
यहाँ बर का नाम नहीं लेते । बरदान को असि कहते हैं, सादृश्य सम्बन्ध न रहने से शुद्धा ।

(ख) गौणी—

गुण लखि गौणीं लच्छणा द्वैही तासु प्रमान ।
सारोपा प्रथमा गनौ दूजी साध्यवसान ॥

सारोपा—

सगुनारोप सुलच्छणा गुण लखि करि आरोप ।

यथा—

विधु बदनी मृगसावक लोचनि ।

आह्लादकत्त्व धर्म चन्द्र में देखकर, उसका मुख में आरोप किया, और चंचलता मृग सावक में देख कर उसका आरोप लोचन में किया ।

साध्यवसाना—

गौणी साध्यवसान सो केवल ही उपमान। यथा—

मुकुर मलिन अरु नयन विहीना।

यहाँ उपमेय मन और विवेक का उल्लेख नहीं है। यहाँ प्रतिबिम्ब ग्राहकता गुण मन और मुकुर दोनों में है, तथा दर्शन नयन और विवेक दोनों में है, अतः गौणी हुई।

३—व्यञ्जना—

सूधो अर्थ जो वचन को तेहि तजि औरै वैन।
समुझपरे ते कहत है, शक्ति व्यञ्जना ऐन।

इसके दो भेद हैं। (१) शाब्दी, और (२) आर्थी। शाब्दी के भी दो भेद होते हैं। (क) अभिधा मूल व्यञ्जना (ख) लक्षणा मूल व्यञ्जना।

(क) अभिधा मूल—

शब्द अनेकारथ निबल होइ दूसरो अर्थ।
अभिधा मूलक व्यंग तेहि भाखत सुकवि समर्थ॥

यथा—

इनहिं बरिहि हरि जानि बिसेखी।

हरि का अर्थ बन्दर भी है, और प्रसंग में बैठ भी जाता है।

(ख) लक्षणामूल—

व्यंग्य लक्षणा मूल सो प्रयोजनानिते होय।
होती रूढ अव्यंग्य है, यह जानत सब कोय॥
गूढ़ अगूढौ व्यंग्य है होत लक्षणा मूल।
छिपी गूढ प्रगटहि कहौ है अगूढ सम तूल॥

गूढ, यथा—

विप्रवंसकै असि प्रभुताई। अभय होइ जौं तुम्हहि डराई॥

यहाँ लक्षित लक्षणा से यह अर्थ हुआ कि मैं तुम्हें नहीं डरता, तुम्हारे ब्राह्मणत्व से डरता हूँ। व्यञ्जना हुई कि तुम्हारे मारने से ब्रह्म हत्या है।

अगूढ़, यथा—

माता पितहि उरिन भए नीके।

यहाँ माता पिता द्रोही व्यंग्य है। सो प्रकट ही है।

२—आर्थी व्यंजना—

होत अर्थ व्यंजकनके दशविधि शुभ्र विशेष।

पहिले (क) व्यक्त विशेष पुनि है (ख) बोधव्य सुलेख। (ग) काक विशेषो (घ) वाक्य अरु (ङ) वाध्य विशेष गिनाइ। (च) अन सन्निध (छ) प्रस्ताव अरु (ज) देश (झ) काल नौ भाइ।

है चेष्टा सुविशेष पुनि दशम भेद कविराइ।
इनके मिले मिलै किये भेद अनन्त लखाइ॥

क—व्यक्ति विशेष व्यंग्य, यथा—

कत सिख देइ हमहिं कोउ माई।

यहाँ पर मन्थरा के बचन में व्यंग्य है। राज्य नाशन क्रिया छिपाती है।

ख—बोघव्य व्यंग्य विशेष, यथा—

पुनि आउव येहि बिरिया काली।

यहाँ बोद्धा जानकी जी पर व्यंग्य है।

(ग)—काकु, यथा—

बाहु सुखेन बनहिं बलि जाऊँ।

सीधे पढ़ने में तो आज्ञा है, पर काकु (भिन्न काण्ठ ध्वनि में) पढ़ने से निषेध जान पड़ता है।

(घ)—वाक्य विशेष, यथा—

कोउ नृप होउ हमहिं का हानी।

वाक्य से यह व्जंजित होता है कि हानि तुमको है।

(ङ)—वाच्य विशेष व्यंग्य, यथा—

कुपथ माग रुज व्याकुल रोगी।
वैद न देइ सुनहु मुनि योगी॥

यहाँ 'व्याह न करने देवेंगे' यह इच्छा व्यञ्जित होती है।

(च)—अन्य सन्निधिं विशेष, यथा—

रीझिहि राजकुँअरि छवि देखी।

यहाँ आपस में बात करके नारदजी को सुनाते हैं।

(छ)—प्रस्ताव विशेष, यथा—

मोहि पद पदुम पखारन कहहू।

इस प्रस्ताव में पितृ तारण व्यंग्य है।

(ज)—देश विशेष, यथा—

मुनि समाज अरु तीरथ राजू।
साचिहु सपथ अघाइ अकाजू॥

झूठ न बोलना व्यङ्कित है।

(झ)—काल विशेष, यथा—

उएउ अरुन अवलोकहु ताता।

यहाँ प्रातःकाल की सूचना दिया, आज ही स्वयम्बर है।

(ञ)—चेष्टा, विशेष, यथा—

खंजन मंजु तिरीछे नयननि।

राम जी का पति होना व्यंजित है।

इस भाँति अभिधा लक्षणा और व्यञ्जना से अर्थ करने की परिपाटी है।

अनूप—ग्रन्थकार का कहना है कि इस ग्रन्थ में उपमा रहित अर्थ हैं। यह समझने लायक बात है, कि इतने बड़े विनम्र होते हुए ग्रन्थकार, रघुवंश, नैषध, किरात, माघादि, के विद्यमान रहने परभी अपनी कविता के अर्थ को अनूप कहने का दावा क्यों करते हैं ? क्या अभिधा लक्षण और व्यंजना वृत्ति के अतिरिक्त कोई चौथा रास्ता है ?

बात यह है कि यह ग्रन्थ इस दृष्टि से रचा गया कि इसका तीन प्रकार से अर्थ किया जाय। आगे चलकर कहेंगे कि जो इस सर में स्नान करेगा, वह आधिभौतिक, आध्यात्मिक और आधिदैविक तापों से न जलेगा, यथा—

सोइ सादर सर मज्जनु करई।
महा घोर त्रय ताप न जरई ॥

सो इसमें तीन प्रकार के अर्थ हैं, आधिभौतिक आध्यात्मिक और आधिदैविक। आधिभौतिक अर्थ से आधिभौतिक ताप, अध्यात्मिक से अध्यात्मिक ताप, और आधिदैविक से अधिदैव ताप नष्ट होते हैं।

इस ग्रन्थमें स्वयम् ग्रन्थकार ने तीनों अर्थों को स्थान दिया है, यही अर्थ की अपूर्वता है। क्रमशः मैं इसी बात के दिखाने का प्रयत्न करूँगा।

आधिभौतिक अर्थ—जिसे आज कल ऐतिहासिक सत्य कहते हैं, वही माधुर्य्यलीला आधिभौतिक अर्थ है। उससे ठीक मनुष्य चरित्र सा राम कथा का वर्णन है, यथा—अयोध्या में राजा दशरथ थे, उन्हें तीन रानियों से चार राज कुमार थे। राजा ने ज्येष्ठ राजकुमार रामजी को यौवराज्य देना चाहा। यह सुन कर मझली रानी ने राजा को वश में लाकर अपने बेटे भरत जी के लिये राज्य माँगा और रामजी का १४ वर्ष का बनवास। रामजी पिता की आज्ञा मान कर बन गये, वहाँ लंकाधिपति रावण उनकी स्त्री वैदेही को हर ले गया। राम जी ने बनचरों की सेना इकट्ठी करके लङ्का पर चढ़ाई की, समुद्र पर सेतु बाँधा। रावण को मार कर सीता जी को वापस लाये, अयोध्या जाने पर भरत की सम्मति से राजसिंहासनारूढ़ हुए। यही अतिसंक्षिप्त आधिभौतिक रामायण है। स्वयम् रामजी ने अपनी आधिभौतिक ही कथा कही, यथा—

कौसलेस दसरथ के जाए।
हम पितु बचन मानि बन आए॥
नाम राम लछिमन दोउ भाई।
संग नारि सुकुमारि सुहाई॥
इहाँ हरी निसिचर बैदेही।
बिप्र फिरहिं हम खोजत तेही॥

भरद्वाज जी ने भी आधिभौतिक कथा का ही आश्रय करके प्रश्न किया था, यथा—

एक राम अवधेस कुमारा।
तिन्हकर चरित बिदित संसारा।
नारि बिरह दुख लहेउ अपारा॥
भयेउ रोषु रन रावनु मारा।

भुसुण्डि जी ने मूल राम चरित मानस कहा है, उसमें से यदि प्रथम द्वितीय और अस्सियवां प्रसङ्ग हटा दिये जायँ, तो आधिभौतिक रामचरित मानस का ८१ सूत्रों (प्रसङ्गों) में पूरा वर्णन आ जाता है।

यह आधिभौतिक अर्थ संसार के बड़े काम का है। सर्वसाधारण का लाभ अधिकतर तो इसी से हो सकता है। जो बात एक के लिये किसी विशेष अवसर पर धर्म है, वही बात दूसरे के लिये दूसरे अवसर पर अधर्म हो जाती है। दो विरोधी धर्मों की प्राप्ति पर किसे ग्रहण करना चाहिये? नीति प्रीति, परमार्थ और स्वार्थ का अधिकार क्षेत्र कहाँ तक है? इन सब अत्यन्त आवश्यकीय बातों का निर्णय तो आधिभौतिक चरित्र में ही है। पिता पुत्र का, भाई भाई का, स्वामी सेवक का, राजा प्रजा का, गुरू शिष्य का, मित्र मित्र का, मित्र शत्रु व्यवहारादि का आदर्श तो आधिभौतिक चरित्र में ही पाया जाता है।

जिस पिता की आज्ञा मान कर श्रीरामचन्द्र धर्म और यश के भागी हुए, उसी पिता की आज्ञा न मान कर भरत जी, उनसे भी बिशेष धर्म और यश के भागी हुए, यथा—

दोउ दिसि समुझि कहत सबु लोगू।
सब बिधि भरत सराहन जोगू॥

क्षत्रिय राज कुमार होकर तीर्थ में ब्राह्मण से कुछ भी न लेना ही धर्म है, और उधर आतिथ्य सत्कार स्वीकार करने के लिये भरद्वाज जी जोर दे रहे हैं, यथा—

कंद मूल फल फूल हम देहिं लेहु करि छोहु।

इस असामञ्जस्य के निर्णय में ग्रन्थकार लिखते हैं कि—

सुनि मुनि बचन भरत हियँ सोचू ।
भयेउ कुअवसर कठिन सँकोचू ॥
जानि गरुइ गुर गिरा बहोरी ।
चरन बंदि बोले कर जोरी ॥
सिर धरि आयेसु करिय तुम्हारा ।
परम धरम येहु नाथ हमारा ॥

इस प्रकार से निर्णय के लिये बड़ी सामग्री ग्रन्थ में है ।

नीति का अधिकार क्षेत्र, यथा—

जहाँ सुमति तहँ संपति नाना ।
जहाँ कुमति तहँ बिपति निदाना ॥

प्रीति का अधिकार क्षेत्र, यथा—

बंदौं अवध भुआल सत्य प्रेम जेहि राम पद ।
बिछुरत दीन दयाल प्रिय तनुतृनइव परिहरेउ ॥

परमार्थ का अधिकार क्षेत्र यथा—

जोग वियोग भोग भल मंदा ।
हित अनहित मध्यम भ्रम फंदा ॥
जनमुमरन जहँ लगि जग जालू ।
संपति बिपति करम अरु कालू ॥
धरनि धामु धनु पुरपरिवारू ।
सरगु नरकु जहँ लगि व्यवहारू ॥
देखिउँ सुनिउँ गुनिउँ मन माहीं ।
मोह मूल परमारथु नाहीं ॥
सखा परम परमारथु एहू ।
मन क्रम बचन रामपद नेहू ॥
राम ब्रह्म परमारथ रूपा ।

स्वार्थ का अधिकार क्षेत्र—

जेहि ते कछु निज स्वारथ होई ।
तेहि पर ममता कर सब कोई ॥

पिता पुत्र का व्यवहार, यथा—

मब सुत प्रीय प्रान की नाईं
सुनु जननी सोइ सुत बड़ भागी।
जो पितु मातु बचन अनुरागी॥

भाई भाई का व्यवहार, यथा—

रामहिं बंधु सोचु दिन राती।
अंडहि कमठ हृदउ जेहि भाँती॥
राम चरन पंकज मन जासू।
लुबुध मधुप इव तजै न पासू॥

स्वामी सेवक का व्यवहार, यथा—

सेवक स्वामि सुभाव सुहावन।
नेमु पेमु अति पावन पावन॥

राजा प्रजा का व्यवहार, यथा—

जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी।
सो नृपु अवसि नरक अधिकारी॥
सिय निंदक अघ ओघ नसाए।
लोक विसोक बनाइ बसाए॥

सीताजी के निन्दक प्रजा को अभय दिया, सीताजी का अनिन्दता जानते हुए परित्याग किया, और स्वयम् सीताजी के विरह की तीव्र वेदना सहन करते रहे। पतिव्रता का परित्याग सभी प्रकार से परम अनुचित है, परन्तु 'प्रजा का रास्ता न बिगड़ने पावे' इस सिद्धान्त के सामने राजा को अपने व्यक्तिगत सुख दुख पाप पुण्य किसी बात की परवाह न करनी चाहिए। इसी लिये भारतवर्ष आज तक राम राज्य न भूल सका।

गुरु शिष्य का व्यवहार, यथा—

भानुवंस भये भूप घनेरे। अधिक एक तें एक बड़ेरे॥
जनम हेतु सब कहँ पितु माता।

करम सुभासुभ देइ विधाता ॥
दलि दुख सजइ सकल कल्याना ।
अस असीस राउरि जग जाना ॥
बूझिय मोहि उपाउ अब सो सब मोर अभागु ।
सुनि सनेह मय बचन गुरु उर उपजा अनुरागु ॥

मित्र मित्र का व्यवहार, यथा—

कइ सुग्रीव नयन भरि बारी ।
मिलिहि नाथ मिथिलेस कुमारी ॥
सब प्रकार करिहौं सेवकाई ।
जेहि विधि मिलिहि जानकी आई ॥
इधर – सुनि सेवक दुख दीन दयाला ।
फरकि उठे द्वौ भुजा बिसाला ॥

मित्र शत्रु का व्यवहार—

सुनु सुग्रीव मारिहौं बालिहि एकहि बान ।
ब्रह्म रुद्र सरनागत गये न उबरहिं प्रान ॥

सो मित्र के हित के लिये जो प्रण किया गया, उसके सामने यश अपयश की भी परवाह न की गई,

यथा —

हत्यौ बालि सहि गारी (विनये)

एवम् व्यवहार की बारीकी से ही आधिभौतिक चरित भरा है। काव्य के पढ़ने का फल यही है कि रामवत् व्यवहार करना चाहिये रावणवत् नहीं।

अतः श्री रामचरित मानस का भौतिक अर्थ कर्म मार्ग का उपयोगी ही है। तापनीय श्रुति ने भी कहा है कि 'धर्ममार्गं चरित्रेण ज्ञानमार्गं तु नामतः'।

आधिदैविक अर्थ—नाटक में हरिश्चन्द्रादिक का खेल देखकर, साधारणदर्शक लोगों को भी आनन्द होता है, और उससे शिक्षा भी मिलती है, पर नाटक के रसिकों को उतने ही से तृप्ति नहीं होती।

उन्हें उन पात्रों की भी खोज होती है, जिन्होंने अभिनय किया था। वे जानना चाहते हैं कि हरिश्चन्द्र कौन बना था ? शैव्या का अभिनय किसने किया था ? विश्वामित्र का खेल करने वाला कौन था ? नाटक समिति के मर्मज्ञ लोग तो रंग मञ्च पर ही पहिचान लेते हैं कि देवदत्त हरिश्चंद्र बने हुए हैं, यज्ञदत्त शैव्या का अभिनय कर रहे हैं रामदत्त विश्वामित्र का वेष बनाये हैं।

इसी भाँति इस संसार नाट्य शाला में कभी, इसके सूत्रधार (भगवान्) स्वयम् रंगमञ्च पर अवत्तीर्ण हो जाते हैं, उस समय इस नाट्य शाला में आनन्दकी वर्षा हो उठती है,

जानकार लोग उसी समय पहिचान लेते हैं कि आज तो स्वयम् सूत्रधार महाशय ही अमुकवेषमें आये हैं।

भगवान् बाल्मीकि से जब प्रभु ने अपने निवास के उपयुक्त स्थान पूछा, तो कहते हैं—

कसन कहहु अस रघुकुल केतू।
तुम्ह पालक संतत श्रुति सेतू॥

श्रुति सेतु पालक राम तुम्ह जगदीस माया जानकी।
जो सृजति जग पालति हरति रुखपाइ कृपा निधान की॥
जो सहससीसु अहीसु महिधरु लखनु सचराचर धनी।
सुर काज धरि नरराज तनु चले दलन खल निसिचर अनी॥

सोरठा—

राम सरूप तुम्हार बचन अगोचर बुद्धि पर।
अविगत अकथ अपार नेति नेति नित निगम कह॥

जगु पेखन तुम्ह देखनिहारे।
बिधि हरि संभु नचावनिहारे॥
तेउ न जानहि मरमु तुम्हारा।
औरु तुम्हहिं को जाननि हारा॥
सोइ जानइ जेहि देहु जनाई।
जानत तुम्हहिं तुम्हइ होइजाई॥

तुम्हरिहि कृपा तुम्हहि रघुनन्दन ।
जानहिं भगत भगत उर चंदन ॥
चिदानन्दमय देह तुम्हारी ।
बिगत बिकार जान अधिकारी ॥
नर तनु धरेउ संत सुरकाजा ।
कहहु करहु जस प्राकृत राजा ॥
राम देखि सुनि चरित तुम्हारे ।
जड़ मोहहिं बुध होहिं सुखारे ॥
तुम जो कहहु करहु सब साँचा ।
जस काछिअ तस चाहिअ नाचा ॥

दोहा—

पूछहु मोहि कि रहौं कहँ, मैं पूंछत सकुचाउँ ।
जहँ न होहु तहँ देहु कहि तुम्हहि देखावउँ ठाउँ ॥

वाल्मीकि जी ने इन थोड़े शब्दों में आधिदैविक चरित का सर्वस्व कह दिया, और इधर जाम्बवान जी शेष पात्रों के विषय में कहते हैं।

हम सब सेवक अति बड़ भागी ।
संतत सगुन ब्रह्म अनुरागी ॥

निज इच्छा प्रभु अवतरइ सुरमहि गोद्विज लागि ।
सगुन उपासक संग तहँ रहहिं मोच्छ सुख त्यागि ॥

वैसे तो आधिभौतिक चरित और आधिदैविक चरित साथ ही साथ चलता है, फिर भी ग्रन्थकार ने बालकाण्ड के दो० १११ से लेकर १८६ तक ७५ दोहों में शुद्ध आधिदैविक चरित्र ही कहा है।

आधिदैविक चरित सम्पूर्ण जगत् के हित के लिये हैं पर भक्तों का तो यह सर्वस्व है। यदि इस जगत का कोई नियामक है, तो यह भी आवश्यक है कि कभी वह इस संसार में अवतीर्ण भी हो। यदि राजा है तो यह भी आवश्यक है कि कभी वह अपने प्रजाओं को दर्शन भी दे कभी करुणा करके कारागार में पधारे। कारागार हो

पधारने से जो राजा की करुणा पर दृष्टिपात न करके, उसे भी बन्दी कह कर उपहास करे, ऐसे निम्न कोटि के पुरुष के स्वागत के लिये उपयुक्त शब्द नहीं मिलते। भगवान् ने कहा है कि—

अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनु माश्रितम्।
परंभावमजानन्तो मम भूत महेश्वरम्॥

अर्थ—मेरे लोक महेश्वर होने के परम भाव को न जानते हुए, मुझ मनुष्य शरीर धारण करने वाले की मूढ लोग अवज्ञा करते हैं।

अतः ग्रन्थकार अपनी कविता में अवसर पाते ही ऐश्वर्य्य कथन करने लगते हैं, जिससे श्रोता को मोह न हो। प्रभु के आधिभौतिक चरित ऐसे हैं, कि आधिदैविक भाव हटते ही मोह उत्पन्न कर देते हैं। उमा को मोह हुआ, गरुड़ को मोह हुआ, संसार के कीट अस्मदादिक की गणना क्या है? अतः महात्मा ग्रन्थकारका यत्र तत्र अपने श्रोता के संभालने का यत्न परम उपादेय है। चरित्र कहते ईश्वरत्व वर्णन कर चलने का यही कारण है। इसके लिये ग्रन्थकार पर आक्षेप करना अन्याय है!

आधिभौतिक चरित्र से शिक्षामात्र मिल सकती है, पर संसार सागर का सन्तरण तो आधिदैविक माहात्म्य के साथ श्रीराम यश गान से ही होता है, यथा—

कपिसेन संग संघारि निसिचर रामुसीतहि आनिहैं।
त्रैलोक पावनु सुजस सुर मुनि नारदादि बखानिहैं॥
जो सुनत गावत कहत समुझत परम पद नर पावई।
रघुबीर पद पाथोज मधुकर दास तुलसी गावई॥

आध्यात्मिक अर्थ—आधिभौतिक और आधिदैविक अर्थ साथ ही साथ चलता है, इस बात को ऊपर दिखला आये हैं, पर इसके अतिरिक्त एक आध्यात्मिक अर्थ भी है, और उसका उपयोग भी इन दो प्रकारों से कम नहीं है, प्रत्युत् अधिक है, जिस भाँति ब्रह्माण्ड में रामावतार अखिल ब्रह्माण्ड के कल्याण के लिए होता है, उसी भाँति जीव के

कल्याण के लिये, इस पिण्ड में नामावतार होता है। जिस भाँति मारीच खरदूषण, रावणादि से ब्रह्माण्ड पीड़ित था, और प्रभु ने अवतीर्ण होकर उनसे ब्रह्माण्ड की रक्षा की, इसी भाँति पिण्ड भी, दुख दोष, कलिमल और मोह से सन्तत सन्तप्त हो रहा है इसमें पड़ा हुआ जीव अत्यन्त विकल है, इसके उद्धार का उपाय यह है कि इसमें प्रभु के नाम का अवतार हो। नामावतार होने से ही जीव का कल्याण होता है। यह आध्यात्मिक अर्थ है। ज्ञानियों के लिये यह आध्यात्मिक अर्थ परम कल्याण का देने वाला है। राम चरितका जानने वाला स्पष्ट अपने शरीर में देख सकता हैं, कि इस समय कौन सा राक्षस उत्पात कर रहा है, और नाम के प्रयोग से उससे छुटकारा पा सकता है। ग्रन्थकार ने बड़े मार्मिक शब्दों में इसका वर्णन किया है, यथा—

राम भगत हित नर तनुधारी।
सहि संकट किय साधु सुखारी॥
नामु सप्रेम जपत अनयासा।
भगत होहिं मुद मंगल बासा॥

राम एक तापस तिय तारी।
नाम कोटि खल कुमति सुधारी॥
रिषिहित राम सुकेतुसुता की।
सहित सेन सुत कीन्ह बिबाकी॥

सहित दोष दुख दास दुरासा।
दलइ नामु जिमि रबिनिसि नासा॥
भंजेउ राम आपु भव चापू।
भव भय भंजन नाम प्रतापू॥

दंडक बनु प्रभु कीन्ह सुहावन।
जन मन अमित नाम किये पावन॥
निसिचर निकर दले रघुनन्दन।
नाम सकल कलिकलुष निकंदन॥

सबरी गीध सुसेवकनि सुगति दीन्ह रघुनाथ।
नाम उधारे अमित खल वेद विदित गुनगाथ॥
राम सुकंठ बिभीषन दोऊ।
राखे सरन जान सब कोऊ॥
नाम गरीब अनेक नेवाजे।
लोक वेद बर बिरिद बिराजे॥
राम भालु कपि कटकु बटोरा।
सेतु हेतु श्रमु कीन्ह न थोरा॥
नाम लेत भव सिंधु सुखाहीं।
करहु बिचार सुजन मन माहीं॥
राम सकुल रन रावनु मारा।
सीय सहित निज पुर पगुधारा॥
राजा रामु अवध रजधानी।
गावत गुन सुर मुनि बरबानी॥
सेवक सुमिरत नाम सप्रीती।
बिनु श्रम प्रबल मोह दल जीती॥
फिरत सनेह मगन सुख अपनें।
नाम प्रसाद सोच नहिं सपनें॥
ब्रह्म रामतें नाम बड़ बरदायक बरदानि।
राम चरित सत कोटि महँ लिये महेस जिय जानि॥

इस प्रकार से तीनो अधिकारियों (कर्मठ, भक्त, और ज्ञानी) के लिये श्रीराम चरित मानस की कथा का तीन अर्थ निकलता है, और सम्पूर्ण कथा में यह तीनों अर्थ अनवरत चला जाता है। यही यहाँ अर्थ की अपूर्वता है।

सुभाव—चित्तद्रव्य लाख (लाह) की भाँति स्वभाव से ही कठिन होता है, तापक विषय के योग से वह पिघल उठता है। काम क्रोध भय स्नेह हर्ष शोक दयादिक चित्त के लिये तापक हैं, इन्हीं के योग से वह पिघलता है, इनके शान्त हो जाने पर फिर कठिन हो जाता है। चित्त

के पिघली हुई दशा में जिस बात का रङ्ग उसमें चढ़ जाता है, उसी रङ्ग को संस्कार, वासना, भावना या भाव कहते हैं।

ऐसा भाव यदि रसके अनुकुल हो तो उसे सुभाव कहते हैं। यही स्थायी भाव है, यही व्यक्त होकर रस हो जाता है, यथा—

कंकन किंकिन नूपुर धुनि सुनि।
कहत लखन सन राम हृदय गुनि॥

यहाँ धुनि सुन कर शृङ्गार के अनुकूल भाव उत्पन्न हुआ।

भाव के चार भेद हैं—(क) विभाव (ख) अनुभाव (ग) सञ्चारी भाव और (घ) स्थायी भाव।

(क) विभाव—यथा—

जिनते जिनके जगत में प्रकटत हैं थिर भाव।
तेई नित्य कवित्त में पावत नाम विभाव॥

जो विभाव दो प्रकार का होता है (१) आलम्बन (२) उद्दीपन।

आलम्बन—

जे निवास थिरभाव के ते आलम्बन जान।

उद्दीपन—

सुधि आवत जिनके लखे ते उद्दीप बखान।
आलम्बन रति के कहत नवल नारि अरु कंत।
उद्दीपन बहु भांति के घन वन सरद बसंत॥

आलम्बन, यथा—

अस कहि फिर चितये तेहि ओरा।
सिय मुख ससि भये नयन चकोरा॥

उद्दीपन, यथा—

प्राची दिसी ससि उगेउ सुहावा।
सिय मुख सरिस देखि सुखु पावा॥

उद्दीपन के दो भेद—(१) दैवी और (२) मानुषी। घन बन शरद ऋतु आदि दैवी उद्दीपन कहलाते हैं, यथा—

घन घमंड नभ गरजत घोरा।
प्रिया हीन डरपत मन मोरा॥

× × ×

प्रगटेसि तुरत रुचिर रितु राजा।
कुसुमित नव तरु राज विराजा॥
बन उपबन बाटिका तड़ागा।
परम सुभग सब दिसा विभागा॥
जहँ तहँ जनु उमगत अनुरागा।
देखि मुएहु मन मनसिज जागा॥

जागै मनोभव मुएहु मन बन सुभगता न परै कही।
सीत सुगन्ध सुमंद मारुत मदन अनल सखा सही॥
बिकसे सरन्हि बहु कञ्ज, गुञ्जत पुंज मंजुल मधुकरा।
कलहंस पिक सुक सरस रव करि गान नाचहिं अपछरा॥

और सखा सखी गृह वस्त्रादि मानुषी उद्दीपन हैं,

सखा, यथा—

करत बतकही अनुज सन मन सिय रूप लोभान।

सखी, यथा—

संग सखी सब सुभग सयानी।
गावहिं गीत मनोहर बानी॥

सखी के कार्य्य—

मण्डन, शिक्षा, उपालम्भ और परिहास।

मण्डन, यथा—

करि सिंगार सखी लइ आई।

शिक्षा, यथा—

सखी कहहिं प्रभु पद गहु सीता।

उपालंभ, यथा—

परबस सखिन लखी जब सीता।
भए गहर सब कहहिं सभीता॥

परिहास, यथा—

पुनि आउब येहि बिरिया काली।
अस कहि मन बिहँसी एक आली॥

(ख) अनुभाव—

थिरभावन को और को प्रकटेते अनुभाव।
वचन, चितैवो वक्र विधि, सात्विक भावरु हाव॥

बचन यथा—

मानहु मदन दुन्दुभी दीन्हीं।
मनसा विस्व विजय कहँ कीन्हीं॥

चितवन, यथा—

प्रभुहि चितै पुनि चितै महि राजत लोचन लोल।
खेलत मनसिज मीन जुग जनु बिधु मण्डल डोल॥

सात्विक भाव—

बँधि रहिबो स्वर भंग पुनि कंप स्वेद अंसुवान।
रोम विवर्नरु अन्त पुनि सात्विकभाव बखान॥

(१) बँधिरहिबो, यथा—

जाइ समीप राम छबि देखी।
रहि जनु कुँअरि चित्र अवरेखी॥

तथा—

अधिक सनेह देह भइ भोरी।

(२) स्वर भंग, यथा—

असकहि रही चरन गहि रानी।
प्रेम पङ्क जनु गिरा समानी॥

(३) कम्प }
(४) स्वेद } यथा—

तन पसेउ कदली जिमि काँपी।

× × ×

थर थर काँपहि पुर नर नारी ॥
लसत स्वेद कन जाल

(५) अंसुवान, यथा—

लोचन जल रह लोचन कोना ।

अथवा—

नयन सलिल रोमावलि ठाढ़ी ।

(६) रोम, यथा—

पुलकि सरीर सभा भये ठाढ़े ।

अथवा—

श्यामल गात रोम भये ठाढ़े ।

(७) विवर्ण, यथा—

बिबरन भयेउ निपट नर पालू ।
दामिनि हनेउ मनहु तरु तालू ॥

(८) भंग, यथा—

कौसल्या नृपु दीख मलाना ।
रविकुलरवि अथएउ जिअ जाना ॥

हाव—

ग्रीवारेचक संयुक्तो भ्रूनेत्रादि विकास कृत् ।
यावादीषत् प्रकाशो यः स हाव इतिकथ्यते ॥

(१) लीला (अन्योन्यवेषधारण), यथा—

अखिल अमोघ शक्ति भगवंता ।

शाक्तों के मत से अवतार ही लीला हाव है । क्योंकि भगवती तारा का अवतार रामचन्द्र रूप और शङ्कर का अवतार जनक नन्दिनी रूप में है ।

(२) विहृत—(लज्जादि से अभिलाष की असन्तुष्टी), यथा—

निजपानि मनि महुं देखियति मूरति सुरूप निधानकी ।
चालति न भुजबल्ली बिलोकनि बिरह भयबस जानकी ॥
पुनि २ रामहि चितव सिय सकुचति मनु सकुचै न ।

(३) विच्छिति (किञ्चित् शृङ्गार), यथा—

सहज सिंगार किए उठि धाईं ।

बेंदी भाल तँबोल मुख सीसासिलसिलेवार ।
दृग आँजै राजे खरी एईं सहज सिंगार ॥

(४) विभ्रम (आतुरता से क्रिया भूषणादि विपर्य्यय) यथा—

उठे राम सुनि प्रेम अधीरा ।
कहुँ पट कहुं निषंग धनुतीरा ॥

(५) विलास (कटाक्षादि से मोहित करना), यथा—

बोली बिहँसि नयन मुँह मोरी ।

(६) ललित (सर्व शृंगार), यथा—

भूषन सजति बिलोकि मृगु मनहुँ किराितिनि फंद ।

(७) किलकिञ्चित (श्रम, अभिलाष, गर्व, स्मित हर्ष, भय और क्रोध का युगपत प्रकाश), यथा—

माँगु माँगु पै कहहु पिय कबहुं न देहु न लेहु ।
देन कहेहु बरदान दुइ तेउ पावत संदेहु ॥

(८) कुट्टमित (मिथ्या दुःख चेष्टा), यथा—

नारि चरित करि ढारइ आँसू ।

(९) विव्वोक (गर्वपूर्वक अनादर), यथा—

केहि हेतु रानि रिसानि परसत पानि पतिहि नेवारईं ।

(१०) मोट्टायित (कटु भाषण पर भी प्रीति), यथा—

जौं मन बच क्रम मम उर माहीं ।
तजि रघुबीर आन गति नाहीं ॥
तौ कृसानु सब कै गति जाना ।
मो कहुं होहु श्रीखंड समाना ॥

तथा,

ऐसेउ बचन कठोर सुनि जौं न हृदय बिलगान ।
तौ प्रभु बिषम बियोग दुखु सहिहहिं पाँवर प्रान ॥

(ग) सञ्चारी भाव—

संचारी जे साथ हो बहुत बढ़ावै हाव।
संचारी तैतीस गनाये।
नौहू रस के अंग सोहाए॥

१—निर्वेद,

जेहि तेहि विधि संसार दुख देखत उपजै खेद।
उदासीनता जगत सो सो कहिये निर्वेद॥

यथा—

होइ न विषय विराग भवन बसत भा चौथपनु।
हृदय बहुत दुख लाग जनम गयउ हरि भगति बिनु॥

२—ग्लानि,

आधि व्याधि ते अंग सिथिल काज माहिं नहिं चाव,

यथा—

जमपुर पंथ सोच जिमि पापी।

३—शङ्का—

वस्तु भावती हानि ते उर पुनि संका भान, यथा—

मोकहुं काह कहब रघुनाथा।
रखिहहिं भवन कि लैहहिं साथा॥

४—असूया—

पर सुख का दुख मानिवो यहै असूया भाव, यथा—

राम तिलक सुनि भा उर दाहू।

५—मद—

धन योवन सौन्दर्य्य ते हर्ष युक्त जो छोभ, यथा—

मुनि मन हरष रूप अति मोरें।
मोहि तजि आनहि बरिहि न भोरें॥

६—श्रम—

बहुत उतायल काज ते श्रम जु सिथिलता अंग, यथा—

खेद खिन्न छुद्धित तृषित राजा बाजि समेत।

७—आलस्य—

गर्भ, जागरन व्याधि ते चित में नहिं उत्साह, यथा—

गइ मुरुछा रामहिं सुमिरि नृप फिर करवट लीन्ह,

८--दीनता—

होय मलिन मन दुखन ते तब दीनता कहाय, यथा--

गहि पद विनय कीन्ह बैठारी।
जनि दिनकर कुल होसि कुठारी॥

९—चिन्ता—

जहाँ अहित के सोच ते चित व्याकुलता होइ, यथा—

सोचु हृदय बिधि का होनिहारा।
सब सुभ सुकृत सिरान हमारा॥

१०—मोह—

जहँ आपने सरीर को नेक न रहै संभार, यथा—

अस कहि मुरुछि परा महि राऊ।

११—स्मृति—

सुमिरन बीती बात को सुस्मृति भाव कहाय, यथा—

तापस अंध साप सुधि आई।
कौसल्यहि सब कथा सुनाई॥

१२—धृति—

विपति परेहू मति रहै अविचल धृति है सोय, यथा—

राज सुनाइ दीन्ह बनबासू।
सुनि हित भयउ न हरख हरासू॥

१३—लज्जा—

जहाँ पराभव आदि ते मन में अति संकोच, यथा—

जैहौं अवध कवन मुह लाई।

१४—आवेग—

अनहोनी को होत लखि चित भ्रम सो आवेग, यथा—

बाँध्यो जलनिधि, नीरनिधि, जलधि, सिंधु, बारीस।
सत्य तोयनिधि, कंपति, उदधि, पयोधि, नदीस॥

१५—गर्व—

जहाँ अधिक उपजै हिये, निज गुनगन को गर्व, यथा—
सूर कवन रावन सरिस स्वकर काटि जेहिं सीस।
हुने अनल अति हरख बहु बार साखि गौरीस॥

१६—विषाद—

भासै कछु न उपाय जहँ, उपजै सोच अपार, यथा—
माथे हाथ मूंदि दोउ लोचन।
तनु धरि सोच लाग जनु सोचन॥

१७—उन्माद—

अय अनमल आचरन, व्यापै विषम विषाद,
यथा—
हे खग मृग, हे मधुकर श्रेनी।
तुम देखी सीता मृग नैनी॥

१८—अवहित्थ—(आकृतिगोपन)—

जो जहँ करि कछु चातुरी, दसा दुरावै आप, यथा
ऐसिउ पीर बिहँसि तेहि गोई!

१९—चपलता—

राग द्वेष ते होइ नहि थिरता हिरदै माँहि, यथा—
पुनि पुनि मुनि उसकहिं अकुलाहीं।

२०—अपस्मार—

जह मूरछा भ्रमऽरू विकलता डोलं यथा—
आसन सयन विभूषन हीना।
परेउ भूमितल निपट मलीना॥

२१—भय—

सहसा अनहित होन सो, चित्त व्यग्र है जाइ यथा—

सब प्रसंग महिसुरन्ह सुनाई।
त्रसित परेउ अवनी अकुलाई॥

२२—जड़ता—

इष्ट अनिष्टहिं देखि सुनि क्रिया हीन होइ जाइ, यथा—
जहँ तहँ मनहुँ चित्र लिखि काढ़े।

२३—हर्ष—

इष्ट वस्तु देखत सुनत मन प्रसन्न जो होइ, यथा—
बार बार मुख चुम्बति माता।
नयन नेह जलु पुलकित गाता॥

२४—मति—

माया भ्रम में शास्त्र को ज्ञान जथारथ होय, यथा—
अब प्रभु कृपा करहु एहि भाँती।
सब तजि भजनु करौं दिन राती॥

२५—उत्कण्ठा—

जहाँ हितू के मिलन को चाह रहत हिय माहिं, यथा—
सकल कहहिं कब होइहिं काली।

२६—उग्रता—

दुर्जनादि अपराध लखि, निर्दयता उर आनि, यथा—
मातु पितहिं जनि सोच बस करसि महीप किसोर।
गरभन के अर्भक दलन परसु मोर अति घोर॥

२७—अमर्ष—

औरै को अभिमान लखि, उर उपजै अभिमान, यथा—
रे नृप बालक काल बस बोलत तोहि न सँभार।
धनुहीं सम त्रिपुरारि धनु विदित सकल संसार॥

२८—विमर्श (विबोध)—

सोवत ते पुनि जागिवो भाव परम सुख दानि, यथा—
उठे लखनु निसि विगत सुनि अरुन सिखा धुनि कान।
गुरु ते पहिलेहि जगतपति जागे राम सुजान॥

२९—वितर्क—

लखि पदार्थ संशय बढै, तामें करै विचार यथा—

लंका निसिचर निकर निवासा।
इहाँ कहाँ सज्जन कर बासा॥

३०—निद्रा—

नींद निपट नैननि बसै भूलि जाय तन मान, यथा—

लोग सोग श्रम बस गए सोई।

३१—स्वप्न—

सोवत में मिथ्या चरित परत साँच ते जानि यथा—

सपने बानर लंका जारी।

३२—व्याधि—

काय कलेस भयादिते व्याधि जुरादिक होइ, यथा—

जरहिं विषम जर लेहिं उसासा।
कवनि राम बिनु जीवन आसा॥

३३—मरण—

राम राम कहि राम कहि राम राम कहि राम।
तन परिहरि रघुबर बिरह राउ गये सुरधाम॥

(घ) स्थायीभाव—

सब भावन सरदार है टारि सकै नहिं कोइ।
सो थिर भाव बखानिये रस सरूप जो होय॥

यह स्थायी भाव ही विभाव, अनुभाव और सञ्चारी भाव से पुष्ट होकर रस रूप में व्यक्त होता है। इसके नव भेद हैं—

(१) रति (२) हास (३) शोक (४) क्रोध (५) उत्साह (६) भय (७) ग्लानि (८) आश्चर्य्य और (९) शम।

(१) रति—

होत अपूरब प्रेम जहँ, सोई रति सह नेम।

देवता, गुरु, मुनि और राजा विषयक भी रति होती है। रति के तीन भेद माने गये हैं। एकाङ्गी (उत्तम) परस्पर (मध्यम) और स्वार्थ वश (अधम)

उत्तम—यथा—

जलदु जनम भरि सुरति बिसारउ ।
जाचत जलु पवि पाहन डारउ ॥
चातक रटनि घटे घटि जाई ।
बढ़ें प्रेम सब भाँति भलाई ॥

मध्यम—तुमहिं राम प्रिय तुम प्रिय रामहिं ।

अधम—सुर नर मुनि सब कै यह रीति ।
स्वारथ लागि करहिं सब प्रीती ॥

देवता विषयक—

गिरिजा पूजन जननि पठाई ।

× × ×

विनय प्रेम बस भई भवानी ॥

गुरु विषयक—

तेइ दोउ बंधु प्रेम जनु जीते ।
गुरुपद कमल पलोटत प्रीते ॥

मुनि विषयक—

मुनिगन मिलन विशेष बन सबहिं भाँति हित मोर ।

राजा विषयक—

वंदौं अवध भुआल सत्य प्रेम जेहि रामपद ।

इसके व्यतिरिक्त वत्सलरति और प्रेयोरति (सेवक सेव्य भाव) भी होती है ।

वत्सल, यथा—

गोद राखि पुनि हृदय लगाये ।
श्रवत प्रेम रस पयद सुहाये ॥

प्रेयोरति, यथा—

सेवक हम स्वामी सिय नाहू ।
होउ नात येह ओर निबाहू ॥

(२) हांस—

रूप बचन वेढंग कछु लखि पुनि आवत हास, यथा—

नाना जिनिस देखि सब कीसा।
पुनि पुनि हँसत कौसलाधीसा॥

तथा—

सुनि केवट के बयन प्रेम लपेटे अटपटे।
बिहँसे करुना अयन चितइ जानकी लखन तन॥

हास के तीन भेद हैं—उत्तम, मध्यम, और अधम

उत्तम, यथा—

हृदय अनुग्रह इन्दु प्रकासा।
सूचत किरन मनोहर हासा॥

मध्यम; यथा—

हँसत देखि नख सिख रिसि ब्यापी।

अधम, यथा—

अस कहि अट्टहास सठ कीन्हा।

(३) शोक—

अहित भये दुख होय जो, वहै शोक परकास, यथा—

तापस वेष विशेषि उदासी।
चौदह बरिस रामु बनवासी॥
सुनि मृदु बचन भूप हिय सोकू।
ससिकर छुअत बिकल जिमि कोकू॥

(४) क्रोध—

अपमानादिक ते जहाँ क्रोध हिये महँ होय, यथा—

परुष वचन सुनि काढ़ि असि, बोला अति खिसिआन,

तथा—

झुकी रानि अवरहु अरगानी।
पुनि अस कबहुँ कहेसि घर फोरी।
तौ धरि जीभ कढावौं तोरी॥

(५) उत्साह—

अपर बीर को देखि कै, चाव चढै चित आय, यथा—

अरुन नयन भृकुटी कुटिल चितवत नृपन्ह सकोप।
मनहु मत्तगजगन निरखि सिंह किसोरहि चोप॥

उत्साह के तीन भेद और हैं, दयोत्साह, दानोत्साह और धर्मोत्साह।

दयोत्साह, यथा—

निसिचर निकर सकल मुनि खाये।
सुनि रघुबीर नयन जल छाये॥
निसिचर हीन करौं महि भुज उठाइ प्रन कीन्ह।

दानोत्साह,

सकुच बिहाइ माँगु नृप मोही।
मोरे नहि अदेय कछु तोही॥

धर्मोत्साह, यथा—

जब प्रताप रवि भयउ नृप फिरी दोहाई देस।
प्रजा पाल अति वेद विधि कतहुँ नहीं अघलेस॥
जहं लगि कहे पुरान श्रुति एक एक सब याग।
बार सहस्र सहस्र नृप किए सहित अनुराग॥

(६) ग्लानि—

घृणित लखि वस्तु को जहं चित जाय घिनाय, यथा—

बिष्ठा, पूय रुधिर, कच हाड़ा।
बरषै कबहुं उपल बहु छाँड़ा॥

(७) आश्चर्य—

विस्मय युत लखि सुनि कछू, अचरज रह उर छाय, यथा—

देखरावा मातहि निज अद्भुत रूप अखंड।
रोम रोम प्रति लागे कोटि कोटि ब्रह्मंड॥
तन पुलकित मुख बचन न आवा।
नयन मूदि चरननि सिरु नावा॥

विसमयवंति देखि महतारी।
भए बहुरि सिसु रूप खरारी॥

(८) भय—

भय विकृत कछु रूप लखि रच्छा की न प्रतीत, यथा—

तब खिसिआनि राम पहँ गई।
रूपु भयंकर प्रकटत भई॥
सीतहि सभय देखि रघुराई।
कहा अनुजसन सयन बुझाई॥

(९) निर्वेद—

हो विरक्त संसार सो, निर्वेद विचार, यथा—

सुख संपति परिवार बड़ाई।
सब परिहरि करिहौं सेवकाई॥
ए सब राम भगत के बाधक।
कहहिं संत तब पद अवराधक॥

इन नव भावों को छोड़कर और किसी अवस्था में चित्त रूपी लाख (लाह) कभी नहीं पिघलती।

सुभाषा—भाषा के दो भेद माने गये हैं। एक देव भाषा जिसे संस्कृत कहते हैं, और एक लोक भाषा, जो लोगों की मातृ-भाषा है, जिसका हमलोग दिन रात प्रयोग करते हैं। संस्कृत की श्रेष्ठता में कुछ वक्तव्य नहीं है, वह सब प्रकार से उत्तम और पूजनीय है। लोक भाषा से उसका अधिक मान होना शास्त्र सम्मत है। जितने धर्म कृत्य हैं, वे सब आज तक उसी भाषा में होते हैं, जितनी रामायण हैं, वे सब भी उसी भाषा में हैं।

ये सब बातें ठीक हैं, पर मातृ भाषा की भी उपेक्षा नहीं की जा सकती, साक्षात् सम्बन्ध सब का तो उसी से है। संस्कृत यदि कपिला गौ है, तो लोक भाषा कृष्णा गौ है। संस्कृत भाषा को पण्डित लोग समझते हैं, लोक भाषा सब कोई समझता है। पुण्य कर्मों में भले ही संस्कृत का प्रयोग हो, क्योंकि उसके उच्चारण में भी

पुण्य हैं, पर जहाँ समझने की आवश्यकता है, वहाँ तो बिना लोक भाषा के काम ही नहीं चल सकता, पण्डित लोग भी संस्कृत को भाषानुवाद करके ही समझते और समझाते हैं। भक्ति में तो सीधे-सीधे समझने से काम रहता है। फिर संस्कृत में सब का अधिकार नहीं है, भाषा में आपामर सब का जन्म सिद्ध अधिकार है। अतः रामयश वर्णन के लिये लोकोपकार दृष्ट्या लोक भाषा ही सुभाषा है, यथा—

कीरति भनिति भूति भलि सोई।
सुरसरि सम सब कहँ हित होई॥

लोक भाषा कृष्णा गौ है, वह कपिला गौ संस्कृत से निम्नकोटि की है, पर उसका दूध (रामयश), कपिला के दूध से अधिक सुफेद (स्पष्ट) है, अधिक गुणद (लघुपाक) है और उसके पान का सबका अधिकार है। कपिला का दुग्ध पान शूद्र को निषिद्ध है, वह रंग में भी कृष्णा के दुग्ध सा श्वेत नहीं होता, और पाक भी उसका गुरु है, अतः सुजान लोग लोक भाषा में ही रामयश का गान और श्रवण करते हैं।

स्याम सुरभिपय बिसद अति, गुनद करहिं सब पान।
गिरा ग्राम्य सिय राम जस, गावहिं सुनहिं सुजान॥

एवम् रीत्या लोक भाषा ही सुभाषा है, पर लोक भाषा के अवान्तर अगणित भेद हैं। सो आनन्द कन्द ब्रजचन्द का चरित वर्णन करते हुए सूरदासजी ने ब्रजभाषा का ही प्रयोग किया है, अतः अवध नरेश भगवान् मर्य्यादा पुरुषोत्तम का चरित्र वर्णन में गोस्वामीजी ने अवधी भाषा का प्रयोग किया।

श्रीगोस्वामीजी का भाषा-ज्ञान बहुत विस्तृत था। ये संस्कृत प्राकृत फारसी के अच्छे ज्ञाता होने पर भी, प्रान्तीय भाषाओं पर भी पूरा अधिकार रखते थे। इन्होंने जहाँ-तहाँ विभिन्न प्रान्त के शब्दों का बड़े उपयुक्त स्थानों में प्रयोग किया है, जिससे उन्हें काव्य रचना में सुभीता हुआ, और उन उन प्रांत के लोगों का भी इनकी रचना में ममत्व हुआ, यथा—

लाधे, अवसेर, भरनी आदि माड़वार देश की बोली है, गाहर, सुआर आदि रीवां प्रांत की बोली है; धुवा, मानस आदि पूरब की बोली है, याको, भरोसो आदि ब्रज की बोली है, ओधे, नेत्र आदि चित्र-कूट प्रांत की बोली है, इत्यादि। गरीब-नेवाज साहिब, गनी, गुनाह आदि अरबी फारसी भी है।

तुलसी सूर दोऊ भये, सुकविन के सरदार।
इनकी कविता में मिली, भाषा विविध प्रकार॥
ब्रजभाषा भाषा रुचिर, कहै सुमति सब कोइ।
मिले संस्कृत पारस्यौ, पै अति प्रगटी होइ॥
ब्रज मागधी मिलै अमर, नाग यमन भाषानि।
सहज पारसीहू मिले, षट विध कवित बखानि॥

दूसरी बात यह है कि श्रीगोस्वामीजी की रचना में, श्रुति कटु, भाषा हीन, क्लिष्ट, अश्लीलादि शब्द दोष, प्रतिकूलाक्षर, अधिक पद, न्यून पद, प्रक्रमभङ्गादि वाक्य दोष, अस्पष्टार्थ, व्याहत, पुनरुक्ति, दुष्क्रम आदि अर्थ दोष तथा अङ्ग वर्णन अङ्गी विस्मरणादि रस दोष के न होने से सुभाषा कहा, यथा—

दोष शब्द हू वाक्य हू अर्थ रसहु में होइ।
तेहि तजि कविताई कर सज्जन सुमति जो होइ॥

अथवा अलंकृत शब्द होने से सुभाषा कहा। शब्दगत-चमत्कार को ही शब्दालङ्कार कहते हैं। इसकी संख्या के विषय में भी मतभेद हैं, फिर भी छ अलङ्कारों के विषय में लिखा जाता है।

१—अनुप्रास—

स्वर बिनु समता वर्ण की अनुप्रास है सोय

इसके तीन भेद हैं (१) छेकानुप्रास (२) वृत्ति अनुप्रास और (३) लाटानुप्रास।

(१) छेकानुप्रास—

जहाँ सवर्ण अनेक की इक बेर समता होय, यथा—

अम्भोज अम्बक अम्ब उमग सुअङ्ग पुलकावलि छई।

यहाँ अकार बकार दो वर्णों की एक बार समता हुई ।

(२) वृत्ति अनुप्रास —

वृत्ति एक ही वरन की बहु बिर समतामान, यथा—

विरति विवेक विनय विज्ञाना ।

यहाँ एक वर्ण 'वि' अनेक बार आया है ।

(३) लाटानुप्रास—

एक शब्द बहुवारगो सो लाटानुप्रास ।
तात्पर्य्य तें होत है औरै अर्थ प्रकाश, यथा—

हे विधि मिलै कंवन विधि बाला ।

२—यमक—

शब्द ओही रहे, अर्थ जुदा ह्वै जाय,

बल प्रताप वीरता बड़ाई । नाक पिनाकहिं सङ्ग सिधाई ।
नाथ साथ साथरी सोहाई ।

३—वीप्सा—

एक शब्द बहु बार जहँ अति आदरते होइ ।
ताहि वीप्सा कहत है कवि कोविद सब कोइ ॥ यथा—
राम राम कहि राम कहि राम राम कहि राम ।
तनु परिहरि रघुवर बिरह राउ गये सुरधाम ॥

४—पुनरुक्तवदाभास—

कहत लगै पुनरुक्ति सो पै पुनरुक्ति न होइ ।
पुनरुक्तिवदाभास तेहि कहै सकल कवि लोइ ॥ यथा—

विधि केहि भांति धरौं उर धीरा ।

यहाँ विधि और भांति समानार्थक होने से पुनरुक्त से मालूम पड़ते हैं, पर यहाँ विधि का अर्थ ब्रह्मदेव है ।

५—वक्रोक्ति—

द्व्यर्थ काकुते अर्थ को फेरि लगावै तर्क,
वक्र उक्ति तासों कहैं जो बुधि अंबुज अर्क ॥

यथा—

सत्य नगर कपि जारेउ बिनु प्रभु आयसु पाइ।
पुनि न गयउ सुग्रीव पहँ तेहि भय रहेउ लुकाइ॥
सत्य कहहि दसकंठ सब मोहिं न सुनि कछु कोह।
कोउ न हमारे कटक महँ तुम सन लरत जो सोह॥

६—श्लेष—

शब्द उभयहू शक्ति ते, श्लेषालङ्कृत मानि।
अनेकार्थबल इक द्वितीय तात्पर्य्य बल जानि॥

यथा—

बहुरि सक्र सम बिनवँहु तेही।
संतत सुरानीक हित जेही॥

शक्र पत्त में सुरानीक का अर्थ देव-सेना, खल पत्त में अच्छी मद्य।

सोइ पराग—अर्थात् वही 'अर्थ अनूप' पराग है। ऊपर कह आये हैं कि अभिधा, लक्षणा, और व्यञ्जना शक्तियों से अर्थ होता है। शक्तियों के भेद से अर्थ भी वाच्य, लक्ष, और व्यंग्य तीन प्रकार के होते हैं। ये तीनों प्रकार अर्थ के अन्तर्गत हैं। इसी भांति पराग में तीन गुण है, सौन्दर्य्य, सौगंध्य और सारस्य, यथा—

बंदौं गुरुपद पदुमपरागा।
सुरुचि सुबास सरस अनुरागा॥

यहाँ वाच्य का सुगन्ध कहा है, क्योंकि पृथक पृथक शब्द के पृथक् अर्थ, उसी भांति नियत हैं, जिस भांति भिन्न-भिन्न पुष्पों के भिन्न-भिन्न गंध नियत हैं, एवम् लक्ष्यार्थ को सौन्दर्य कहा, क्योंकि वाच्यार्थ से जब अन्वय या तात्पर्य्य की उपपत्ति नहीं होती, तो उसे छोड़कर सुन्दर अर्थ ग्रहण किया जाता है, जिसमें अन्वय और तात्पर्य्य बन जायँ। व्यङ्ग तो काव्य का प्राण ही है, इसीलिये उसे सारस्य कहा—

सोइ मकरन्द—अर्थात् पुष्परस को मकरन्द कहते हैं। वही सुभाव मकरन्द है, क्योंकि आनन्द तो सुन्दर भाव से ही होता है, यथा—

मातु बचन सुनि अति अनुकूला ।
जनु सनेह सुरतरु के फूला ॥
सुख मकरन्द भरे श्रिय मूला ।

पराग स्पष्ट रहता है, इसलिये अर्थ को पराग कहा, और मकरंद अन्तर्गत होता है, भौंरे को ही मिलता है इसलिये सुभाव को मकरंद कहा ।

सोइ सुबासा—भाव यह कि सुभाषा ही सुगन्ध है । सुभाषा को सुगन्ध इस लिये कहा कि भाषा का प्रभाव सुगन्ध की भाँति दूर तक पहुँचता है । अर्थ और भाव अलग रक्खा रहे, सुकवि की भाषा में ही ऐसा प्रभाव है, कि उसके सुनने मात्र से श्रोता को आनन्द आ जाता है, यथा—

सरल कवित कीरति विमल सोइ आदरहि सुजान ।
सहज बयर बिसराइ रिपु, जो सुनि करहि बखान ॥

श्रीरामचरितमानस के प्रेमी एक अङ्गरेज ने कहा कि 'कोदंड धुनि अति चंड' इस वाक्य के सुनने से ही रामजी के धनुष की ध्वनि आज भी कानों में प्रति-ध्वनित हो उठती है ।

तथा—

तया कवितया किंवा किंवा वनितया तया ।
पादनिक्षेपमात्रेण यया न हरते मनः ॥

श्रीमानस प्रसङ्गस्थ टीका भाव प्रकाशिकाम् ।
रामार्पणं करोम्यद्य तेन में प्रीयताम् प्रभुः ॥

—:*:—

मानस प्रेमियो,

मणि———माला

मंगाइये ।

मणि—हिन्दी का एक मात्र श्री रामचरितमानस तथा तुलसी सम्बन्धी मासिक पत्र "मानस-मणि" वार्षिक मूल्य ३)

माला-धार्मिक (विशेष कर रामायण सम्बन्धो) पुस्तकों की मालायें

१—श्री मानस रत्नावली (ग्रन्थमाला)

२—श्री महेन्द्र पुस्तकमाला

३—श्री कौशलेन्द्र कथामाला

४—श्री रामदास भक्तमाला

प्रत्येक माला में अनेक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। अनेक प्रेस में हैं ।

२) जमा करके स्थाई ग्राहक बनिये । जैसे जैसे पुस्तकें छपेंगी, आपके नाम भेजी जाँयगी ।

मणि-माला मंगाने का पता—

मंत्री

मानस संघ

पो० रामवन

वाया सतना ।

हमारा अबतकका प्रकाशन

१— श्रीरामचरितमानसमें ब्रह्मचर्य जीवन |-) अ
(श्री स्वामी स्वरूपानन्दजी)

२—श्रीरामचरितमानसमें श्रीहनुमानजी |-)
(श्रीजानकी राय 'जनक')

३ – श्रीरामचरितमानसमें वीर रस |-)
(श्रीशारदाप्रसादजी)

४—श्रीरामचरितमानसमें शत्रुघ्न कुमार |)
(श्रीसुदर्शन सिंह जी)

५—नव निर्झरिणी [नवधा भक्ति पर ९ कहानियां] |-)
(श्री 'चक्र')

६—शबरी मंगल =)
(श्रीशम्भुप्रसादजी बहुगुना एम० ए०)

७—संगीत रामायण (द्वितीय संस्करण) =)
(श्रीस्वामी शिवानन्दजी सरस्वती)

८—मानस-प्रसङ्ग [प्रथम भाग] ≡)
(मानस राजहंस श्री पं० विजयानन्दजी त्रिपाठी

९—ध्यान के समय ||≡)
(एफ० जे० अलेक्जेण्डर)

१०—अष्टदल (कहानियाँ) |=)
(श्री 'चक्र')

मिलने का पता:—

मन्त्री – मानससंघ,

पो० रामवन, वाया सतना ।